द्वितीय संस्करण
मार्गशीर्ष २००३
दिसम्बर १९४६

द्वितीय संस्करण
मूल्य ३)

मुद्रक—
काव्यतीर्थ पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी
ओंकार प्रेस, प्रयाग।

वक्तव्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास में वीरभूमि राजस्थान के डिंगल-साहित्य का गौरवपूर्ण स्थान है। हिन्दी के आदिकाल में डिंगल भाषा के कवियों ने अपनी ओजपूर्ण और वीरवाणी द्वारा जिस प्रकार की वीरगाथाओं और काव्यों का सृजन किया था उससे हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में अभूतपूर्व उन्नति हुई इसमें संदेह नहीं। कुछ कवियों की रचनाएं तो स्वाभाविकता और मौलिकता में अपनी समता नहीं रखतीं। राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासकार महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ तथा स्वर्गीय देवीप्रसाद मुंसिफ़ साहित्याचार्य आदि ने अवश्य ही इस सम्बन्ध में बड़ी खोजपूर्ण सामग्री एकत्र की है। किन्तु अभी तक उन कवियों की चुनी हुई कृतियों को सुसंपादित रूप में हिन्दी संसार के संमुख लाने का कम प्रयत्न हुआ है जिससे उच्च श्रेणी के हिन्दी के पाठक और अध्ययनशील विद्यार्थी उन वीरगाथाओं तथा उनके श्रेष्ठ रचनाकारों के सम्बन्ध में सरलता से जानकारी प्राप्त कर सकते। इस दृष्टि से राजस्थानी साहित्य के विद्वान श्री मोतीलाल मेनारिया का यह प्रयत्न वास्तव में सराहनीय और प्रशंसनीय है।

श्रीयुत मेनारिया जी ने इस ग्रंथ में डिंगल-साहित्य के पाँच श्रेष्ठ रत्नों के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके काव्यों की भी आलोचनात्मक दृष्टि से विवेचना की है। साथ ही चुनी हुई रचनाओं का भावार्थ और शब्दार्थ देकर उन्हें अध्ययन-साध्य बना दिया है। प्रारंभ में डिंगल साहित्य के इतिहास, उसके व्याकरण, उसकी उत्पत्ति, उसके प्रसार तथा उसकी विभिन्न धाराओं पर भी अध्ययन पूर्ण प्रकाश डाला गया है। यद्यपि डिंगल-साहित्य में अन्यान्य विषयों पर भी सुन्दर रचनाएँ हुई हैं किन्तु इस ग्रंथ में केवल 'वीररस' की कृत्तियां को विशेष महत्त्व दिया गया है। हमें आशा है कि इस ग्रंथ का हिन्दी संसार में समुचित आदर होगा और डिंगल साहित्य के अध्ययन और मनन में पूर्ण सहायता प्राप्त होगी।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस ग्रंथ को 'साहित्य-रत्न' परीक्षा में पाठ्य-पुस्तक स्वीकृत किया है। आशा है विद्यार्थी इससे समुचित लाभ उठा कर श्री मेनारिया जी को प्राचीन साहित्य के अन्यान्य उपयोगी ग्रंथों को उपलब्ध करने के लिये और भी अधिक अवसर देंगे।

स्वर्गीय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महाराज सयाजीराज गायकवाड महोदय ने बम्बई के सम्मेलन में जो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उसी सहायता से सम्मेलन इस "सुलभ-साहित्य-माला" के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस "माला" में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रंथन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। इस "माला" के द्वारा हिन्दी साहित्य की जो श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय स्वर्गीय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महोदय को है। उनका यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

साहित्य मंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

निवेदन

भारतीय साहित्य में राजस्थानी साहित्य (जो डिंगल साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है) का स्थान कितने महत्त्व का है यह बात साहित्य-प्रेमियों से छिपी हुई नहीं है। राजस्थानी भाषा के साहित्य में जो भाव-स्फूर्ति और उद्वेग है वह केवल राजस्थान के लिये ही नहीं, वरन् सारे भारतवर्ष के लिये गौरव की वस्तु है। इतना ही नहीं, राजस्थानी कवियों की वीररस की कविता तो इतनी उच्च कोटि की बन पड़ी है कि उस तरह की कविता का संसार के अन्य किसी भी साहित्य में मिलना दुर्लभ है। इसका कारण यह है कि इन कवियों ने जो कुछ भी लिखा है वह सुनी सुनाई बातों के आधार पर नहीं, बल्कि अपने निजी अनुभव के आधार पर। इसीलिये इनके काव्य में सच्चाई और स्वाभाविकता है। कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर को एक बार जब ये कविताएँ सुनाई गईं तब वे सुनकर मंत्र-मुग्ध से हो गये और बोले—"भक्ति रस का काव्य तो भारत-वर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी कोटि का पाया जाता है। राधा-कृष्ण को लेकर हरएक प्रान्त ने मंद या ऊँची कोटि का साहित्य पैदा किया है। लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य-निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य और कहीं भी नहीं मिलता।" रवि बाबू के इस कथन में कितना सत्य है इसका अनुभव सहृदय पाठकों को इस ग्रंथ के पढ़ने से होगा।

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिये तैयार की गई है। इसमें डिंगल साहित्य के पाँच सर्वश्रेष्ठ कवियों की वीररसात्मक कविताओं का संग्रह किया गया है। पुस्तक के आरम्भ में एक भूमिका दी गई है जिसमें डिंगल भाषा की उत्पत्ति, उसके व्याकरण, साहित्यिक तथा ऐतिहासिक विशेषताओं आदि पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। संकलित कविताओं को पढ़ने के पहले विद्यार्थी यदि इस भूमिका को ठीक तरह से हृदयंगम कर लेंगे तो उन्हें आगे पढ़ने में अधिक सुविधा होगी। प्रत्येक कवि की कविता के पूर्व उसकी संक्षिप्त जीवनी और उसके काव्य की आलोचना भी दे दी गई है। कठिन शब्दों तथा वाक्यांशों का स्पष्टीकरण फुटनोटों में कर दिया गया है

और जहाँ कहीं आवश्यक समझा गया है वहाँ भावार्थ भी दे दिये हैं। यथासंभव पुस्तक को विद्यार्थियों के लिये अधिक से अधिक उपादेय बनाने की कोशिश की गई है और आशा है कि कम से कम उत्तमा के विद्यार्थियों को तो अब इस नवीन भाषा के समझने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी।

इस पुस्तक के लिखने में जिन ग्रंथों से सहायता ली गई है उनकी सूची इस पुस्तक के अन्त में दी हुई है। इनके रचयिताओं के आभार को हम हृदय से स्वीकार करते हैं। पुस्तक विद्यार्थियों के लिये और उन्हीं के दृष्टिकोण से लिखी गई है। लेकिन काव्य-रसिक अन्य सज्जनों का भी इससे मनोरंजन हो सकेगा, ऐसी आशा है। जिन सज्जनों के पास पूरी पुस्तक को पढ़ने के लिये समय नहीं है उनसे भी हमारी प्रार्थना है कि वे कविराजा सूर्यमल की कविताओं को तो अवश्य पढ़ें। इससे उन्हें मालूम हो जायगा कि वीररस की वास्तविक कविता कैसी होती है।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिकारियों ने डिंगल भाषा को अपने पाठ्यक्रम में स्थान देकर अपनी उदारता और गुण-ग्राहकता का जो परिचय दिया है वह उनके उच्च गौरव के सर्वथा अनुकूल है और इस सुकृपा के लिये उनके प्रति जितनी भी कृतज्ञता प्रकट की जाय वह थोड़ी है। उनके इस सुयोग से 'डिंगल' और 'सम्मेलन' दोनों की लोकप्रियता बढ़ेगी, इसका हमें पूर्ण विश्वास है।

उदयपुर (मेवाड़)
ता० २०-८-१९४०

विनीत
मोतीलाल मेनारिया

विषय-सूची

—:o:—

भूमिका

(१) डिंगल भाषा की उत्पत्ति और उसका नामकरण

राजस्थान के कवियों ने अपनी कविताएँ दो प्रकार की भाषाओं में लिखी हैं, डिंगल और पिंगल। चन्दबरदाई, दुरसाजी, पृथ्वीराज आदि की गणना यहाँ डिंगल के कवियों में और मीरां, वृन्द, विहारी आदि की पिंगल के कवियों में की जाती है। यह डिंगल राजस्थान की बोलचाल की भाषा राजस्थानी का साहित्यिक रूप है और पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन, अधिक साहित्य-सम्पन्न तथा अधिक ओजगुण-विशिष्ट है। उत्पत्ति इसकी अपभ्रंश से हुई है।

भाषा-वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मध्य एशिया को छोड़ कर जिस समय हमारे पूर्व पुरुष, प्राचीन आर्य पंजाब में आकर बसे थे और उस समय जो भाषा वे बोलते थे- उससे वैदिक संस्कृत की उत्पत्ति हुई। कालान्तर में इस वैदिक संस्कृत ने साहित्यिक रूप धारण कर लिया जिसका नाम पीछे से संस्कृत हुआ। पर साथ साथ वह बोलचाल की भाषा भी बनी रही। प्राचीन काल की बोलचाल की इस भाषा का नाम प्राकृत पड़ा। काल के अनुसार विद्वानों ने प्राकृत को दो भागों में विभक्त किया है, पहली प्राकृत और दूसरी प्राकृत। पहली 'पाली' के नाम से प्रसिद्ध है और दूसरी 'प्राकृत' के नाम से। आगे चलकर, देश-भेद के कारण, इस प्राकृत के भी कई भेद हो गये जिनमें चार मुख्य माने गये हैं—शौरसेनी, मागधी अर्ध-मागधी और महाराष्ट्री[1]। धीरे धीरे प्राकृत का भी साहित्यिक संस्कार होने लगा और शिष्ट समुदाय ने इसे भी व्याकरण के जटिल नियमों से जकड़ दिया जिससे इसकी स्वच्छन्द गति रुक गई और इसका प्रचार-क्षेत्र केवल पढ़े-लिखे लोगों तक ही सीमित रह गया। परन्तु इसके साथ-साथ जन साधारण की भाषा का जो प्रवाह अबाध रूप से चल रहा था वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया और अंत में प्राकृत उस रूप को प्राप्त हुई जो आजकल अपभ्रंश के नाम से प्रसिद्ध है।

---

१ हिन्दी शब्दसागर की भूमिका; पृ० ४।

विक्रम की छठी अथवा सातवीं शताब्दी के आसपास अपभ्रंश ने प्राकृत को लोकभाषा के पद से च्युत किया, ऐसा भाषातत्वज्ञों का अनुमान है। इस समय से लगाकर विक्रम की दशवीं शताब्दी के अंत तक अपभ्रंश का राजस्थान में ही नहीं, बल्कि समस्त उत्तरी भारत में पश्चिम से लेकर पूर्व में मगध तक और दक्षिण में सौराष्ट्र तक खूब प्रचार रहा। पर बाद में इसकी भी वही गति हुई जो पहली तथा दूसरी प्राकृत की हुई थी। अर्थात् इसमें भी साहित्यरचना होने लगी और वैयाकरणों ने इसे भी अस्वाभाविक नियमों से बाँधना प्रारंभ किया। इससे अपभ्रंश के भी दो रूप हो गये। एक रूप तो वह था जिसका साहित्य में व्यवहार होता था और दूसरा वह रूप जिसके द्वारा जनसाधारण का विचार-विनिमय हुआ करता था। पहला रूप तो व्याकरण के नियमों से बँधकर स्थिर हो गया पर दूसरा बराबर विकसित होता रहा। आगे चलकर उसके भी कई भेद-उपभेद हो गये जिनमें तीन मुख्य थे—नागर, उपनागर और व्राचड़। इनमें भी नागर अपभ्रंश मुख्य थी। अणहिलवाड़ा के चालुक्य राजा सिद्धराज जयसिंह देव और कुमारपाल के आश्रित जैन विद्वान् हेमचन्द्र (जन्म सं० ११४५) ने अपने ग्रंथ 'सिद्ध हेमशब्दानुशासन' में इस नागर अपभ्रंश का आधार शौरसेनी प्राकृत को माना है। इसी नागर अपभ्रंश से राजस्थानी-भाषा का जन्म हुआ जिसके साहित्यिक रूप का नाम डिंगल है।

राजस्थानी भाषा का डिंगल नाम कब और क्यों पड़ा, इस विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं और अपनी अपनी पहुँच तथा बुद्धि के अनुसार उन्होंने नाना प्रकार की कल्पनाएँ की हैं। नीचे हम प्रधान प्रधान मत और उनकी समीक्षाएँ देते हैं।

पहला मत—'डिंगल' शब्द का असली अर्थ अनियमित अथवा गँवारू था। ब्रज-भाषा परिमार्जित थी और साहित्य-शास्त्र के नियमों का अनुसरण करती थी। पर डिंगल इस सम्बंध में स्वतन्त्र थी। इसलिये इसका यह नाम पड़ा।[१]—डाक्टर एल० पी० टैसीटरी।

समीक्षा—डिंगल शब्द को गँवारू का द्योतक मान कर टैसीटरी महोदय ने अपने मत को पुष्ट करने की कोशिश की है, जो एक भारी भूल है। कारण, एक तो यह है कि प्रारंभ में डिंगल गँवारों की भाषा नहीं, बल्कि पढ़े-लिखे चारण-भाटों की भाषा थी जो बड़े विद्वान् और

---

१ Journal of the Asiatic Society of Bengal Vol. X, No. I० p.376.

काव्य-पटु होते थे। दूसरे, राज दरबारों में डिंगल का ब्रजभाषा से भी अधिक सम्मान होता था। अतः शिष्ट समुदाय की भाषा को हर्गिज़ भी गँवारू नहीं बतलाया जा सकता। इसके सिवा उनका यह कथन भी, कि डिंगल अनियमित थी अर्थात् साहित्य शास्त्र के नियमों से मुक्त थी, ठीक नहीं है। डिंगल के प्राचीन ग्रंथों तथा फुटकर गीतों से स्पष्ट विदित होता है कि व्याकरण की विशुद्धता के साथ-साथ छंद, रस, अलंकार आदि काव्यांगों का डिंगल की कविता में भी उतना ही ध्यान रक्खा जाता था जितना कि ब्रजभाषा की कविता में। हाँ, शब्दों की तोड़ मरोड़ ब्रजभाषा की अपेक्षा डिंगल में अवश्य कुछ अधिक पाई जाती है, पर इसीलिये उसे एक गँवारू भाषा मान लेना उचित नहीं प्रतीत होता है। सारांश यह कि प्रारंभ में न तो डिंगल का अर्थ गँवारू था और न डिंगल भाषा अनियमित जिससे उसका यह नाम पड़ा हो।

दूसरा मत—प्रारंभ में इस भाषा का नाम 'डगळ' था पर बाद में 'पिंगल' शब्द के साथ तुक मिलाने के लिए उसका 'डिंगल कर दिया गया।[1]

—डा० हरप्रसाद शास्त्री

समीक्षा—शास्त्री जी ने डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति 'डगळ' से बतलाई है और अपने मत के समर्थन में चौदहवीं शताब्दी के एक प्राचीन गीत का अंश भी उद्धृत किया है जो उन्हें कविराजा मुरारिदान जी से प्राप्त हुआ था वह अंश यह है :—

"दोसे जंगळ डगळ जेय जळ बगळ चाटे।
अनहुँता गळ दियै गळाहुँता गळ काटे॥"

गीत के इस अंश का अर्थ शास्त्री जी ने नहीं दिया। केवल इतना ही कह कर छोड़ दिया है 'इससे स्पष्ट है कि जंगल देश अर्थात् मरुदेश की भाषा डिंगल कहलाती थी।' इस उद्धृत अंश में तो भाषा का कहीं जिक्र भी नहीं है। फिर न मालूम शास्त्री ने इस तरह का निर्णय किसके आधार पर दे दिया। भाषा, रचना-शैली आदि से भी यह कविता सोलहवीं शताब्दी की लिखी हुई प्रतीत नहीं होती। फिर भी थोड़ी देर के लिये यदि मान भी लिया जाय कि यह उसी समय की रचना है तब भी प्रश्न यह

---

१ preliminary report on the operation in search of MSS. of Bardic chronicles, p. 15.

उठता है कि प्रारंभ में डिंगल का 'डगळ' नाम पड़ा क्यों? डगळ कहते हैं मिट्टी के ढेले को अथवा अनगढ़ पत्थर को और इसी अर्थ में यह उपरोक्त कविता में भी प्रयुक्त हुआ है। यदि पिंगल से तुक मिलाने के लिये 'डगळ' का डिंगल बना दिया गया तो पहले वह भाषा कौन-सी थी जिसकी तुलना में यह भाषा (मरुदेश की भाषा) डगळ के समान अनगढ़ और अमार्जित दिखाई पड़ती थी। ब्रजभाषा तो हो नहीं सकती क्योंकि चौदहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा का इतना प्रौढ़ एवं व्यवस्थित रूप न था कि उसके सामने डिंगल ढेले के समान असंस्कृत दीख पड़ती। राजस्थानी भी नहीं हो सकती। क्योंकि राजस्थानी उस समय बोलचाल की भाषा थी और बोलचाल की भाषा की अपेक्षा साहित्य-निर्माण की भाषा अधिक प्रौढ़ और अधिक परिमार्जित होती ही है। इसके सिवा एक बात और भी है वह यह कि प्रारंभ में डिंगल एक तरह से चारण-भाटों ही की भाषा थी और ये लोग बड़े अनुराग के साथ इस भाषा में काव्य-रचना करते थे। उनकी वीररस की कविताएँ तो प्रायः इसी भाषा में हुआ करती थीं। अतएव हमारे ख्याल से कोई भी ऐसा अकृतज्ञ, आत्म-सम्मान से शून्य और विचारहीन पुरुष न होगा कि जो जिस भाषा में, चाहे वह कितनी ही अनुन्नत तथा अविकसित क्यों न हो, अपने विचार ही प्रकट करता न आया हो, बल्कि जो उसके उदरपूर्ति का भी साधन रही हो उसे हीनता की दृष्टि से देखे और 'डगळ' नाम देकर उसे अपमानित करे।

तीसरा मत—डिंगल में 'ड' वर्ण बहुत प्रयुक्त होता है। यहाँ तक कि यह डिंगल की एक विशेषता कही जा सकती है। 'ड' वर्ण की इस प्रधानता को ध्यान में रखकर ही पिंगल के साम्य पर इस भाषा का नाम डिंगल रक्खा गया है। जिस प्रकार बिहारी लकार प्रधान भाषा है उसी तरह डिंगल भी डकार प्रधान भाषा है।[1]—श्रीगजराज ओझा।

समीक्षा—यह मत भी निराधार है। डिंगल की दो-चार कविताओं में 'ड' वर्ण की प्रचुरता देखकर उसे इसकी विशेषता बतलाना और उसी बुनियाद पर इसका डिंगल नाम पड़ने की क्लिष्ट-कल्पना करना सिवा हेत्वाभास के और कुछ नहीं है। भारतवर्ष में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं, पर अभीतक कहीं भी ऐसा सुनने में नहीं आया कि अमुक अक्षर की प्रधानता के कारण अमुक भाषा का अमुक नाम पड़ा। बिहारी भाषा में लकार की प्रधानता है और होगी। पर इससे क्या हुआ? इसका असर

१ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १४, पृ० १२२.

उसके नामकरण पर तो कुछ भी नहीं पड़ा यदि यही बात है तो फिर पिंगल में 'प' वर्ण की प्रधानता होनी चाहिये, जो नहीं है। दूसरी आपत्ति इस मत को स्वीकार कर लेने में यह है कि हमें मान लेना पड़ता है कि पिंगल के साम्य पर डिंगल शब्द की उत्पत्ति हुई। पिंगल की अपेक्षा डिंगल एक अधिक पुरानी भाषा है, इसे सभी स्वीकार करते हैं। क्या आश्चर्य है, यदि डिंगल के साम्य पर पिंगल शब्द, व्रजभाषा के अर्थ में, ळ प्रयुक्त होने लगा हो ? पृथ्वीराजरासो को तो जाने दीजिये। वह तो एक जाली ग्रंथ समझा जाता है। पर नीचे लिखी प्राचीन कविताओं को देखिये। इनमें 'ड' वर्ण की प्रधानता कहाँ है ?—

(१) दुनिया जोड़ी दोय, सारस नैं चकवो सुण्यांह।
मिल्यौ न तीजो मोय, जो जो हारी जेठवा॥
जिण बिन घड़ी न जाय, जमवारो किम जावसी।
बिलखतड़ी बीहाय, जोगण करगो जेठवा॥

—ऊजळी (सं० ११००)

(२) हंस-गाहणी मिगलोचनि नार।
सीस समारइ दिन गिणइ॥
जिण सिरजइ उळिगण घर नारि।
जाइ दिहाड़ाउ झूरिताँ॥

बीसलदेव रासो (सं० १२१२)

(३) पिंधउ दिढ़ संणाह बाह-उप्पर पक्खर दइ।
बंधु समदि रण धसउ सामि हम्मीर वअण लइ॥
उड्डल णह-पह भमउ खग्ग रिउ सीसहि झल्लउ।
पक्खर पक्खर ठिल्लि पिल्लि पव्वअ उप्फालउ॥
हम्मीर कज्जु जज्जल भणह कोहाणल मुह मह जलउ।
सुलितान सीस करबाल दइ तेज्जि कलेवर दिअ चलउ॥

—जज्जल (सं० १३५०)

(४) वधवाणी ब्रह्माणी कोमारी सरसत्ति।
कीरत रिणमल नूं करूँ, देवी देहि समत्ति॥
पौर दिखावे प्राण, गढ़ भेलै भेलै गिरै।
सांमहियो सुरत्ताण, गुहिलोतां चढ़ियो गळै॥

—गाडण पसाइत (सं० १४६०)

(५) प्रभू भजंतां प्राणियाँ, कीजै ढील न काय।
भर बत्थां अथ काढ़जै, मन्दिर जळतै माँय॥
जीह भणै भण जीह भण, कंठ भणै भण कंठ।
मो मन लागौ मह-महण, हीर पटोळै गंठ॥

—ईश्वरदास (सं० १५६५)

चौथा मत—डिंगल, डिम+गल से बना है। डिम का अर्थ डमरू की ध्वनि तथा गल का गले से तात्पर्य्य है। डमरू की ध्वनि रणचण्डी का आह्वान करती है तथा वह वीरों को उत्साहित करनेवाली है। डमरू वीर रस के देवता महादेव का बाजा है। गले से जो कविता निकल कर डिम् डिम् की तरह वीरों के हृदयों को उत्साह से भर दे उसी को डिंगल कहते हैं। डिंगल-भाषा में इस तरह की कविता की प्रधानता है। इसलिये वह डिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई।[1]—पुरुषोत्तमदास स्वामी।

समीक्षा—महादेव को वीररस का देवता और डमरू की ध्वनि को उत्साहवर्धक मान कर इस मत की कल्पना की गई है। पर न तो महादेव वीररस के देवता ही हैं और न डमरू की ध्वनि कहीं उत्साह वर्द्धक मानी गई है। वीररस के देवता महादेव नहीं, इन्द्र हैं।[2] महादेव तो रौद्ररस के अधिष्ठाता हैं। फिर डमरू की ध्वनि की भाँति उत्साह वर्द्धक और गले से निकली हुई कविता का गँठबंधन तो बिल्कुल ही युक्ति-शून्य और हास्यास्पद है। अतएव इस मत का निराधार होना स्पष्ट सिद्ध है।

उपरोक्त मतों के सिवा भी डिंगल शब्द की उत्पत्ति के विषय में दो-चार मत और प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ, कुछ लोग 'डिंगल' को डिंभ+गल से बना हुआ मानते हैं और डिंभ का अर्थ बालक तथा गल का अर्थ गला लेकर 'डिंगल' का अर्थ करते हैं—बालक की भाषा। जैसे प्राकृत किसी समय बाल भाषा कहलाती थी उसी तरह राजस्थान की यह काव्य-भाषा भी डिंभगल या डिंगळ कहलाई। इसके विपरीत कुछ दूसरे लोग डिंगलकी उत्पत्ति डिग्गी और गल से बतलाते हैं। डिंगल के प्रसिद्ध विद्वान् पं० रामकर्ण जी आसोपा का कथन है कि डिंगल शब्द की कल्पना पिंगल शब्द की समकक्षता में की गई

१ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १४, पृ० २२४.
२ महाराज प्रतापनारायण सिंह; रस कुसुमाकर, पृ० १६३.

है।[1] डिंगल शब्द रूढ़ प्रतीत होता है। डिंगल शब्द का मूलभूत धातु 'डंगि गत्यर्थक है स्वर्गीय ठाकुर किशोर सिंह जी बारहठ ने डिंगल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'डीङ्' धातु से मानी है। बाबू श्यामसुन्दर दास जी का कहना है कि जो लोग ब्रजभाषा में कविता करते थे उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी; और उससे भेद करने के लिये मारवाड़ी भाषा का उसी की ध्वनि पर गढ़ा हुआ डिंगल नाम पड़ा। इसी तरह दो-एक और साहित्य-ऐतिहासिकों ने भी इस विषय पर अपने विचार प्रकट किये हैं। पर वास्तविक तथ्य पर पहुँचने में सहायता उनसे भी नहीं मिलती और इसलिये इस विषय में अब अधिक कुछ कहना वृथा है।

लेकिन, बात है बहुत साधारण। सभी मानते हैं कि प्रारंभ में डिंगल एक तरह से चारण-भाटों ही की भाषा थी और अपनी काव्य-रचनाएँ ये लोग बहुधा इसी भाषा में किया करते थे। इसके साथ ही साथ यह भी सभी पर विदित है कि अपने आश्रय दाताओं के कार्य-कलापों का, उनके शौर्य-पराक्रम का ये लोग बहुत बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया करते थे[2]। धन के लोभ से कायर को शूर, कुरूप को सुन्दर, मूर्ख को पंडित और कृपण को दानी कह देना इनके लिये एक साधारण बात थी। सत्यासत्य के यथार्थ निरूपण की अपेक्षा हाँ हुजूरी द्वारा अपने स्वामियों को खुश करके उनसे अपना स्वार्थ साधने की ओर इनका ध्यान विशेष रहता था। कारण, कविता उनकी जीविका ही तो ठहरी! अतएव उनके वर्णन अधिकांश में अत्युक्ति पूर्ण हुआ करते थे। अर्थात् वे डींग हाँका करते थे। इसलिये, जो भाषा इस प्रकार डींग हाँकने के काम में लाई जाती थी उसका शीतल, श्यामल आदि शब्दों के अनुकरण पर लोगोंने, संभवतः श्रोताओं ने, डींगल (डींग से युक्त) नाम रख दिया जिसका

---

१ एकदश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का विवरण; भाग दूसरा, पृ० १७.

२ In the magniloquent strains of a Charana every thing takes a gigantic form as if he, was seeing the world through a magnifying glass; every skirmish becomes a Mahabharata. every little hamlet a Lanka, every warrior a giant who with his arms upholds the sky.

—Dr. L. P. Tessitori,

परिमार्जित रूप कहिये अथवा विकृत रूप, यह आधुनिक शब्द डिंगल है। राजस्थान में वृद्ध चारण-भाट आज भी डिंगल न कहकर डींगळ ही बोलते हैं। इस तरह से बने हुए-दो-एक शब्द और भी डिंगल भाषा में मिलते हैं; जैसे—"अकबरिये इक बार दागल की सारी दुनी"—दुरसाजी। यह 'दागल' शब्द दाग+लसे बना है और इसका अर्थ है—दाग़ से युक्त, दाग़वाला। हिन्दी में भी बहुत से ऐसे शब्द पाये जाते हैं जिनकी उत्पत्ति कुछ कुछ इसी प्रकार से हुई है, यथा—बोझिल, धूमिल इत्यादि।

सर्व साधारण की रोज़मर्रा की भाषा की अपेक्षा यह भाषा (डिंगल) जिसमें कविगण अपनी कविताएँ लिखा करते थे कुछ कठिन भी होती थी। अतएव अत्युक्ति के भाव के अतिरिक्त भाषा काठिन्य का भाव भी इस 'डिंगल' शब्द में निहित है और जिस तरह 'प्राकृत' और संस्कृत नामों से ही इन भाषाओं के क्रमशः प्राकृतिक (Natural) और परमार्जित (Polished) होने का भाव प्रकट होता है उसी तरह 'डिंगल' शब्द से भी अत्युक्ति और कठिनता के भाव का बोध होता है।

(२) डिंगल भाषा का संक्षिप्त व्याकरण

किसी भी देश की भाषा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसके व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक होता है। बिना व्याकरण-ज्ञान के न तो उस भाषा के साहित्य में ठीक तरह से पैठ हो सकती है और न उसके उच्चारण, स्वराघात, वर्तनी (Spelling) इत्यादि की विशेषताओं का पता लग सकता है। व्याकरण भाषा को संगठित करता तथा उसके रूप को व्यवस्थित बनाता है जिससे उसके गौरव एवं सौन्दर्य दोनों की वृद्धि होती है और उसकी आयु भी बढ़ती है। लेकिन फिर भी स्मरण रखना चाहिये कि पहले भाषा बनती है और व्याकरण के नियम बाद में निश्चित होते हैं। इसलिये व्याकरण की पहुँच की भी सीमा है। इसके सिवा भाषा एक ऐसी चीज़ है जो बराबर विकसित होती है और कभी व्याकरण की बेड़ियों को मानती और कभी तुड़ाकर स्वतंत्र हो जाती है। ऐसी दशा में व्याकरण अधिक से अधिक एक भाषा के शुद्ध रूप की परिभाषा कर सकता है, उसे निर्धारित नहीं कर सकता। अतएव आगे डिंगल भाषा का जो संक्षिप्त व्याकरण दिया जाता है वह सिर्फ इस अभिप्राय से कि इससे पाठकों को डिंगल व्याकरण सम्बन्धी

मोटी मोटी बातों का ज्ञान हो जाय। लेकिन जो लोग इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक हो उन्हें चाहिए कि वे पृथ्वीराज, ईश्वरदास, सूर्यमल आदि डिंगल के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों के ग्रंथों का अध्ययन करें। इससे उन्हें डिंगल साहित्य की गहनता, उसके सौन्दर्य एवं सजीवता का पता भी लग जायगा और डिंगल व्याकरण विषयक बहुत सी नई बातें भी मालूम होंगी।

(१) उच्चारण :—

(अ) डिंगल में 'ल' का उच्चारण कहीं 'ल' और कहीं वैदिक भाषा के 'ळ' की भाँति मूर्धन्य होता है। आजकल बहुत से विद्वानों में 'ळ' के स्थान पर 'ल' लिखने की प्रवृत्ति देखी जाती है। पर भाषा-शुद्धता की दृष्टि से यह ग़लत है। यह 'ळ' जब किसी शब्द के बीच में आता है तब उसके स्थान पर 'ल' लिख देने से उसके अर्थ में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। पर बहुत से ळकारान्त शब्द ऐसे हैं जिनको लकारान्त कर देने से उनका अर्थ बदल जाता है। इस तरह के शब्दों के थोड़े से उदाहरण देखिये :—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
खाळ	पनाला	खाल	चमड़ा
गोळ	गुड़	गोल	वृत्ताकार
माळी	जाति विशेष	माली	धन सम्बन्धी
काळ	मृत्यु	काल	कल, दूसरा दिन
कुळ	वंश	कुल	सब, तमाम
पोळ	दरवाज़ा	पोल	अंधेर, खोखलापन
गाळ	गाली, दुर्वचन	गाल	कपोल
भाळ	शिकार की खोज	भाल	ललाट
चंचळ	घोड़ा	चंचल	चपल

(आ०) डिंगल की वर्णमाला में तालव्य 'श' और मूर्द्धन्य 'ष' नहीं है। 'ष' का प्रयोग 'ख' के रूप में होता है। लिखने में तालव्य 'श' के स्थान पर भी दन्त्य 'स' ही लिखा जाता है; पर बोलते वक्त जहाँ जिस शकार अथवा सकार की आवश्यकता होती है, वहाँ वहीं बोला जाता है, जैसे :—

देखे अकबर दूर, वेरौ दे दुसमण घड़ा।
सांगाहर रण सूर, पैर न खिसै प्रतापसी॥

यह दोहा लिखने में उपरोक्त ढंग से लिखा जायगा पर पढ़ते समय इसमें आये हुए सकारों का उच्चारण निम्नलिखित ढंग में से होगा :—

देखे अकबर दूर, घेरो दे दुशमण घड़ा।
सांगाहर रणशूर, पैर न खिसे प्रतापसी॥

(इ०) डिंगल में बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका उच्चारण करते समय किसी अक्षर विशेष पर ज़ोर पड़ता है। ज़ोर देकर न पढ़ने से उस शब्द का अर्थ कुछ और होता है और ज़ोर देकर पढ़ने से कुछ और हो जाता है। उदाहरण के लिये 'राड़' शब्द को लीजिये। इसमें 'रा' पर ज़ोर देकर न पढ़ने से इसका अर्थ 'लड़ाई' होता है और ज़ोर देकर पढ़ने से 'पैतृक प्रभाव' हो जाता है। इस तरह के थोड़े से और शब्द यहाँ दिये जाते हैं :—

वायरो = (१) हवा, (२) शून्य, विहीन
नार = (१) स्त्री (२) सिंह
नाड़ो = (१) इज़ारबंद (२) छोटा जलाशय
नाथ = (१) स्वामी (२) नथ-बंधन
कद = (१) ऊँचाई (२) किस समय
पीर = (१) मुसलमानों के धर्म गुरू (२) पीहर
मोड़ = (१) घुमाव (२) आम्र मंजरी; सेहरा

(ई०) डिंगल की वर्णमाला में ऋ, लृ और लॄ अक्षर नहीं हैं और एक ही अक्षर 'व' का उच्चारण दो तरह से होता है। उच्चारण का अंतर दिखलाने को 'व' और 'व़' कर दिया जाता है। अर्थात् एक 'व' तो वैसा ही रहने दिया जाता है और दूसरे के नीचे बिंदी लगा दी जाती है। ऐसा न करने से अनेक स्थलों पर अर्थ का अनर्थ हो जाने की संभावना रहती है; क्योंकि दोनों के अर्थमें बहुधा भिन्नता होती है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनसे स्पष्ट हो जायगा कि 'व' के नीचे बिंदी न लगाने से शब्द का क्या अर्थ होता है, और बिंदी लगा देने से, उच्चारण के अनुसार, उसका अर्थ किस प्रकार बदल जाता है :—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
वचियो	बचागया	व़चियो	छोटा सा बच्चा
वची	बच गई	व़ची	बच्ची

वास	, गंध	वास	निवास, का स्थान
वळ	टेढ़ापन	वळ	जलने का आदेश
वळती	लौटती हुई	वळनी	जलती हुई
वात	हवा	वात	कहानी, किस्सा
वार	दिन, द्वार	वार	सहायतार्थ चिल्लाना

(२) शब्द-कोष—

डिंगल और आधुनिक हिन्दी दोनों का जन्म एक ही भाषा अपभ्रंश से हुआ है। लेकिन व्याकरण, शब्द-कोष आदि की दृष्टि से आज यदि इनकी तुलना की जाय तो दोनों में बहुत अंतर दिखाई पड़ता है। इसका मुख्य कारण यह है कि साहित्य की भाषा होने से डिंगल का रूप जहाँ बहुत कुछ स्थिर हो गया है, वहाँ बोलचाल की भाषा होने के कारण हिन्दी में निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा है और इस परिवर्तन का सबसे अधिक प्रभाव इसके शब्द-कोष पर पड़ा है। हिन्दी पर मुसलमानी तथा यूरोपियन भाषाओं का बहुत गहरा असर पड़ा है, पर डिंगल इनके प्रभाव से बहुत कुछ बंचित रही है। साहित्य में डिंगल का सबसे अच्छा नमूना बीकानेर के प्रसिद्ध कवि पृथ्वीराज कृत 'बेलि किसन रुकमणी री' में मिलता है। यह ग्रंथ मुगल सम्राट् अकबर के शासनकाल में लिखा गया था, जब कि उत्तरी भारत में मुसलमानी भाषाओं का काफ़ी प्रचार था। लेकिन यदि गणना की जाय तो 'वेलि' में भी मुश्किल से सौ पीछे पाँच शब्द अरबी-फ़ारसी के मिलेंगे। कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दी की अपेक्षा डिंगल पर विदेशी भाषाओं का रंग बहुत कम चढ़ा है और उसके शब्द-भंडार में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भारतीय भाषाओं के शब्दों ही की बहुलता है। अनुमानतः डिंगल में प्रतिशत ८० शब्द संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के, ५ शब्द अरबी-फ़ारसी आदि मुसलमानी भाषाओं के और शेष शब्द प्रांतीय हैं। इनमें से कुछ शब्द तो तत्सम रूप में आये हैं, पर अधिकांश तद्भव रूप में आये हैं। इन प्रान्तीय शब्दों के विषय में यहाँ पर इतना और भी जान लेना ठीक होगा कि इसमें से बहुत से शब्द ऐसे भी हैं जिनके पर्यायवाची शब्द हिन्दी में नहीं मिलते। अतः हिन्दी की व्यापकता, लोक-प्रियता और अभिव्यंजना-शक्ति को बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि इन शब्दों को हिन्दी में ग्रहण किया जाय। डिंगल शब्द-कोष की उल्लिखित तीनों

यह दोहा लिखने में उपरोक्त ढंग से लिखा जायगा पर पढ़ते समय इसमें आये हुए सकारों का उच्चारण निम्नलिखित ढंग में से होगा :—

देखे अकबर दूर, घेरौ दे दुशमण घड़ा।
सांगाहर रणशूर, पैर न खिसै प्रतापसी ॥

(इ०) डिंगल में बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका उच्चारण करते समय किसी अक्षर विशेष पर ज़ोर पड़ता है। ज़ोर देकर न पढ़ने से उस शब्द का अर्थ कुछ और होता है और ज़ोर देकर पढ़ने से कुछ और हो जाता है। उदाहरण के लिये 'राड़' शब्द को लीजिये। इसमें 'रा' पर ज़ोर देकर न पढ़ने से इसका अर्थ 'लड़ाई' होता है और ज़ोर देकर पढ़ने से 'पैतृक प्रभाव' हो जाता है। इस तरह के थोड़े से और शब्द यहाँ दिये जाते हैं :—

बायरो=(१) हवा, (२) शून्य, विहीन
नार=(१) स्त्री (२) सिंह
नाड़ो=(१) इज़ारबंद (२) छोटा जलाशय
नाथ=(१) स्वामी (२) नथ-बंधन
कद=(१) ऊँचाई (२) किस समय
पीर=(१) मुसलमानों के धर्म गुरू (२) पीहर
मोड़=(१) घुमाव (२) आम्र मंजरी; सेहरा

(ई०) डिंगल की वर्णमाला में ऋ, लृ और लॄ अक्षर नहीं हैं और एक ही अक्षर 'व' का उच्चारण दो तरह से होता है। उच्चारण का अंतर दिखलाने को 'व' और 'व़' कर दिया जाता है। अर्थात् एक 'व' तो वैसा ही रहने दिया जाता है और दूसरे के नीचे बिंदी लगा दी जाती है। ऐसा न करने से अनेक स्थलों पर अर्थ का अनर्थ हो जाने की संभावना रहती है; क्योंकि दोनों के अर्थमें बहुधा भिन्नता होती है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनसे स्पष्ट हो जायगा कि 'व' के नीचे बिंदी न लगाने से शब्द का क्या अर्थ होता है, और बिंदी लगा देने से, उच्चारण के अनुसार, उसका अर्थ किस प्रकार बदल जाता है :—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
वचियो	बचागया	व़चियो	छोटा सा बच्चा
वची	बच गई	व़ची	बच्ची

वास	गंध	वास	निवास, का स्थान
चळ	[illegible]	चळ	चलने का आदेश
चळती	लौटती हुई	चळती	चलती हुई
वात	हवा	वात	कहानी, किस्सा
वार	दिन, वार	वार	सहायतार्थ चिल्लाना

(२) शब्द-कोष—

डिंगल और आधुनिक हिन्दी दोनों का जन्म एक ही भाषा अपभ्रंश से हुआ है। लेकिन व्याकरण, शब्द-कोष आदि की दृष्टि से आज यदि इनकी तुलना की जाय तो दोनों में बहुत अंतर दिखाई पड़ता है। इसका मुख्य कारण यह है कि साहित्य की भाषा होने से डिंगल का रूप जहाँ बहुत कुछ स्थिर हो गया है, वहाँ बोलचाल की भाषा होने के कारण हिन्दी में निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा है और इस परिवर्तन का सबसे अधिक प्रभाव इसके शब्द-कोष पर पड़ा है। हिन्दी पर मुसलमानी तथा यूरोपियन भाषाओं का बहुत गहरा असर पड़ा है, पर डिंगल इनके प्रभाव से बहुत कुछ बंचित रही है। साहित्य में डिंगल का सबसे अच्छा नमूना बीकानेर के प्रसिद्ध कवि पृथ्वीराज कृत 'बेलि किसन रुकमणी री' में मिलता है। यह ग्रंथ मुगल सम्राट् अकबर के शासनकाल में लिखा गया था, जब कि उत्तरी भारत में मुसलमानी भाषाओं का काफ़ी प्रचार था। लेकिन यदि गणना की जाय तो 'वेलि' में भी मुश्किल से सौ पीछे पाँच शब्द अरबी-फ़ारसी के मिलेंगे। कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दी की अपेक्षा डिंगल पर विदेशी भाषाओं का रंग बहुत कम चढ़ा है और उसके शब्द-भंडार में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भारतीय भाषाओं के शब्दों ही की बहुलता है। अनुमानतः डिंगल में प्रतिशत ८० शब्द संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के, ५ शब्द अरबी-फ़ारसी आदि मुसलमानी भाषाओं के और शेष शब्द प्रांतीय हैं। इनमें से कुछ शब्द तो तत्सम रूप में आये हैं, पर अधिकांश तद्भव रूप में आये हैं। इन प्रान्तीय शब्दों के विषय में यहाँ पर इतना और भी जान लेना ठीक होगा कि इसमें से बहुत से शब्द ऐसे भी हैं जिनके पर्यायवाची शब्द हिन्दी में नहीं मिलते। अतः हिन्दी की व्यापकता, लोक-प्रियता और अभिव्यंजना-शक्ति को बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि इन शब्दों को हिन्दी में ग्रहण किया जाय। डिंगल शब्द-कोष की उल्लिखित तीनों

श्रेणियां के शब्द से थोड़े से शब्द नमूने के तौर पर नीचे दिये जाते हैं :—

(अ०) संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द :—

धन्न (प्रा० धएण), सिसहर (सं० शशधर), चातृंगि (प्रा० चातगी), कुंइरि (अप० कुंअरि), खिण (अप० खण), सगळां (प्रा० सगळ), संदेसड़ा (प्रा० संदेशड्उ), नेड़ी (प्रा० णिअड़), निसह (सं० निशा), पारावत (सं०), निसद्द (प्रा० णिसद्द), सेरियाँ (अप० सेरी), सल्ल (सं० शल्य) अपछर (सं० अप्सरा), डूंगरिया (अप० डूंगर), ओळंबा (सं० उपालम्भ), मुसाण (अप० मसाण) वयण (अप० बअण), केहर (सं० केसरी), मोरत (सं० मुहूर्त) अरक्क (सं० अर्क), केवाण (सं० कृपाण), सीह (सं० सिंह), मयमंत (सं० मदमत्त), सादूळो (सं० शार्दूल), समाथ (सं० समर्थ), रुहर (सं० रुधिर), मछर (सं० मत्सर), पारख (सं० परीक्षा), दुज (सं० द्विज), कोपनल (सं० कोपानल), पिसण (सं० पिशुन), अखोण (सं० अक्षौहिणी), सोहिल (प्रा० सुलह), कुण (अप० कउण), किमाड़ (अप० किवाँड़), नयणे (अप० नयणहि), काज (अप० कज्ज), सहरी (प्रा० सरिसी), वाबहियउ (अप० वप्पीहा), दणयर (सं० दिनकर) ।

(आ०) अरबी, फ़ारसी और तुर्की के शब्द :—

ढोल (अ० दुहल), अमले (अ० अमल), कमाण (फ़ा० कमान), विडाणा (फ़ा० बेगाना), मखमल (अ०), नफो (अ० नफ़ा), इखलास (अ० इखलास), लानत (फ़ा०), मुतलब (अ० मतलब), मुसकल (अ० मुश्किल), आद (फ़ा० याद), हिकमत (अ०), गरज (अ० ग़रज), नुकसाण (अ० नुक़सान), आखर (फ़ा० आख़िर), नूर (अ०) हुन्नर (फ़ा० हुनर), गुन्हो (फा० गुनाह), जरदी (फ़ा० ज़र्द), आसक (अ० आशिक), मोजात (अ० मुह्ताज), पतसाह (फ़ा० पादशाह), काफर (अ० काफ़िर), कोम (अ० क़ौम), हाजर (अ० हाज़िर), काबू (तु०), बगतर (फ़ा० बख़्तर), तोप (तु०), मसत (फ़ा० मस्त), कागळ (अ० काग़ज़), निहाल (फ़ा०), अजब (अ० अजीब) मोज (अ० मौज), मसीत (फ़ा० मसजिद), मुळक (अ० मुल्क), इतबार (अ० एतबार, सिलह (अ०), गरकाब (अ०), रासि (अ० रास) दुवा (अ० दुआ), गोला (अ० ग़ुलाम), अरज्ज (अ० अर्ज़), दौलती (अ० दौलत),

हसम (अ० हशम), महल (अ०), इनाम (अ०), कुसामद (फ़ा० खुशामद), आब (फ़ा०), फसाद (अ०)

(इ०) प्रान्तीय शब्द :—

भाठो = पत्थर । गंडक = कुत्ता । नाड़ो = छोटा जलाशय । ढोला = पति । डींभू = बर्र । कदर = तलवार । फिट = धिक्कार । रूक = खड्ग । डाकी = वीर । वादीला = हठी (पति) । दाटक = हृष्ट-पुष्ट । बाहळो = बरसातीनाला । वेह = मंगल कलश । पाधर = समथल । पाधरा = अनुकूल । बुवौ = चला । उरसांह = आकाश । टीपणो = पञ्चाङ्ग । रावत = योद्धा । जरद = कवच । थह = गुफा । ढिगलो = ढेर । माहू = मनुष्य । डाच = मुख । छरा = पंजा । हेलो = पुकार । थावर = शनिवार । लड़ा लूं = पत्र, पुष्प आदि से सघन । पलोत = मैला, नीच । खाँखळ = आँधी । फाल = छलांग । काँकड़ = जंगल । कांकळ = युद्ध । आटी = वेणी । पंगी = कीर्ति । नाणो = रुपया । चाड़ = बुराई । ओले = शरण में । वैंडो = पागल । लंकाळ = सिंह । वांसे = पीछे; सौंवठो = मजबूत ।

(३) कारक, विभक्ति :—

डिंगल में विभक्तियों की दशा बड़ी विचित्र और गड़बड़ है । कुछ विभक्तियाँ तो ऐसी हैं जो दो-दो तीन-तीन कारकों में लगती हैं और कुछ एक ही कारक में । इसके सिवा कुछ विभाक्तियाँ ऐसी भी हैं जो डिंगल के प्राचीन ग्रंथों में तो देखने में आती हैं, पर अर्वाचीन डिंगल में उनका स्थान दूसरी विभक्तियों ने ले लिया है । उदाहरणार्थ, प्राचीन डिंगल में सम्बन्ध की विभक्ति 'ह' है, पर अब इसका प्रयोग नहीं होता । प्राचीन डिंगल में सम्बन्ध कारक के बहुवचन में 'हां' का प्रयोग मिलता है, पर आजकल इसका काम 'आँ' से लिया जाता है, जैसे,—डेडराँ, अहिराँ आदि । डिंगल की अन्य विभक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

कारक	विभक्ति	उदाहरण
कर्ता	इ, उ[1]	ढोलइ, करहउ ।
कर्म	उ[1]	संदेशड़उ, कळेजउ ।

---

१ यह 'उ' विभक्ति इन दोनों कारकों के पुल्लिंग शब्द के एक-वचन में लगती है । डिंगल में स्त्रीलिंग शब्द कर्त्ता तथा कर्म कारकों में प्रायः इकारान्त तथा आकारान्त होते हैं । कर्त्ता कारक के पुल्लिंग के बहुवचन में बहुधा 'आ' और कर्म के बहुवचन में बहुधा दोनों लिंगों में 'आँ' या 'याँ' होता है ।

करण	इ, इइं (बहु०)	मुखि, कामिइ, हाथ, पाने
संप्रदान	ए, नूँ, आँ	घरे, राजानूँ, अहाँ।
अपादान	हूँ, हूँत, हुँतो, हुँती, हुँता	गळां हुँता, खुसी हूँत आदि।
सम्बन्ध	ह, हाँ (बहुवचन)	हलांह, भवाँह, करहाँ।
अधिकरण	इ, ए (बहुवचन)	गिरि, मगि, निखाणे।

उपरोक्त विभक्तियों के अलावा डिंगल में कुछ शब्द या शब्दांश ऐसे मिलते हैं जो विभक्तियों का काम देते हैं, पर जो न तो विभक्तियाँ कहे जा सकते हैं और न प्रत्यय की श्रेणी में आते हैं। इनको परसर्ग (Post Positions) की संज्ञा दी गई है। इनके प्रयोगों के अनुसार इनका वर्गीकरण इस तरह किया गया है :—

कर्म—नइ, प्रति, रहइ।

करण—करि, नइ, पाहि, साथि, सिउँ, सूँ।

सम्प्रदान—कन्ह, नै, प्रति।

अपादान—कन्हइ, तउ, थउ, थकउ, थकि, पासइ, लगि।

सम्बन्ध—केरउ, तणउ, चा, ची, चो, नउ, रउ, रहइ।

अधिकरण—कन्हइ, ताँइ, पासइ, माँझळ, मझारी, माँझि, माँ, माँहि।[1]

(४) **सर्वनाम**—डिंगल में सर्वनाम शब्दों के रूप बहुत कुछ अप-भ्रंश के सर्वनाम शब्दों के रूप से मिलते-जुलते हैं। भिन्न भिन्न सर्वनामों के रूप नीचे दिये जाते हैं :—

(अ०) अपत्यवाचक सर्वनाम

हूँ = मैं

कर्ता—हूँ, मइँ, म्हे

कर्म—हूँ, मूँ, मूझ, अम्ह

सम्बन्ध—मूझ, माहरो, अम्हीणो, म्हारउ, मो, मूं

अधिकरण—अम्हाँ

तूँ = तू

कर्ता—तुम्ह, तुम्हाँ, तूँ

कर्म—तुम्ह, तुम्हाँ

करण—तुम्हाँ सूँ

अधिकरण—तूझ, ताहरा, तुम्हीणां

(आ०) निश्चयवाचक सर्वनाम

---

१ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १४, पृ० १५९.

यह

कर्ता—एह, ए, आ

कर्म—एह, ए, आ

करण—एणइ, इण, इणिन, एणि

सम्प्रदान—एहँ, इहँ, अहाँ

अपादान—एह, ए

सम्बन्ध—एह, ए

अधिकरण—एहि, एणइ, इणन, इणि एणि

(३०) सम्बन्धवाचक सर्वनाम

जो

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	जो, जु, जा	जे, जेअ।
कर्म	”	जेहु
करण	जेणइ, जिणइ, जेणिन, जिणि	जेहि
सम्प्रदान	जा, जिहिं, जउ, जू	जेणि, जिणि, जे, जिअँ, जिएँ
अपादान	जास, जस, जेह, जिह, जे	
सम्बन्ध	”	
अधिकरण	जहँ, जिहिं, जेणइ, जिणइँ, जेणि, जिणि	

सो

	एक वचन	बहुवने
कर्ता	सोइ, सोय, सु, सा	ते
कर्म	”	तेह
करण	तिणइ	तेहिं, तेइ
संप्रदान	ता, तहँ, तउ, तू	तेह, तिह, तेहँ, ते, तिअँ, तियँ
अपादान	तास, तस, तसु, तह, तेह, ते	”
संबन्ध	”	
अधिकरण	ताहि, ताहिं, तेणइ, तिणइ, तेणि, तिणि	

(३०) प्रश्नवाचक और अनिश्चयवाचक सर्वनाम

कौन, कोई

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	कावण, कउँण, कुँण, कुण	केइ, केवि
कर्म	को, कोई, कोइ, कोवि, कोय, काँइँ	केइ
करण	कउणइँ, कुणइँ, किणइँ, कणि	कुणि
सम्प्रदान	क, किहँ	केहि, केइ
अपादान	कह, किण, केइ, कहि	केहँ, केह, कियँ
सम्बन्ध	कुणह	"
अधिकरण	कुणइँ, कहिं, काहइँ, किण	

(उ०) सार्वनामिक विशेषणः—

एतउ, एतलउ = इतना। जेतउ, जेतलउ = जितना। तेतउ, तेतलउ = तितना। केतउ, केतलउ = कितना। एवड़उ, इसउ, अइसउ, एहड़उ = ऐसा। जेवड़उ, जिसउ, जेहड़उ = जैसा। तेवड़उ, तिसउ, तेहड़उ = तैसा। केवड़उ, किसउ, केहड़उ = कैसा। अपणउ = अपना। सो = समान। सगळउ = सब। किउँ = कुछ। के = कई। काँई = क्या, कुछ।

(५) अव्ययः—

पुणि = फिर। तई = तब। जई = जब, यदि। वळे, वळी = फिर। किरि = मानो। अने, ने = और। किम, कैम = कैसे। इहाँ = यहाँ। परि = ज्यों, समान। जाणे, जाणि = मानों। तिणि = इसलिये। केड़इ = पीछे। बाँसे = पीछे। कारणि = लिये। तदि = तब। इ = ही। साम्ह = सामने। तिम = तैसे। नहु = नहीं। म = कुत्र = कहा। किसूं = कैसे। केथि = कहाँ। ऐथि = यहाँ। पिण = भी। तोइ = तो भी। तळे = नीचे।

(६) क्रियाएँः—डिंगल में क्रियाओं के रूप कहीं अपभ्रंश, कहीं पश्चिमी हिन्दी और गुजराती के रूप से मिलते हैं। बोलचाल की राजस्थानी से भी इनकी काफ़ी समानता है।

वर्तमान काल

(अ०) हिन्दी में वर्तमानकालिक क्रिया के साथ जिस अर्थ में 'है' का प्रयोग होता है उसी अर्थ में डिंगल में बहुधा 'छइ' काम आता है। इसके रूप तीनों पुरुषों में इस प्रकार होते हैं :—

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष,	छं	छां
मध्यम पुरुष,	अछइ, छइ	छउ
अन्य पुरुष,	अछइ, छइ	छइ, अछइ

(आ०) अपभ्रंश की तरह डिंगल में भी वर्तमानकालिक क्रियापद-बहुधा इकारान्त होते हैं, जैसे :—

भरइ पलट्टइ भी भरइ, भी भरि भी पळटेहि।
ढाढी हाथ संदेसडो धण विललंती देहि॥

सामान्य भूत—

(अ०) डिंगल में मूल क्रिया के पीछे 'इउ'; 'यउ' तथा 'इउ' लगाकर सामान्यभूत काल के रूप बनाये जाते हैं, यथा—कहिउ (कहा), उड़िउ (उड़ा) आदि।

(आ०) कहीं कहीं 'इअउ' तथा 'ठउ' प्रत्यय का प्रयोग भी मिलता है, जैसे—पूजियउ, (पूजा), दीठउ (देखा) आदि।

भविष्यत् काल—

भविष्यत काल के रूप डिंगल में दो तरह से बनाये जाते हैं—(१) मूलक्रिया के अंत में 'सी' 'स्यूं' तथा 'स्याँ' लगा कर (२) 'ला' 'ली' तथा 'लो' लगा कर, जैसे—रहसी (रहेगा)' रहस्यूँ (रहूँगा), मिलस्याँ (मिलेंगे), बूडेला (डूब जायगा), बूडेली (डूब जायगी) इत्यादि।

पूर्वकालिकक्रिया—

डिंगल में क्रिया के अंत में 'एवि', 'एविय', 'इ', 'ई', 'अ', 'य', 'नइ', 'करि' आदि प्रत्यय लगाकर पूर्वकालिक के रूप बनाये जाते हैं, जैसे—पणमेवि, पणमेविय, लइ, पालिअ, बहिय, करीनइ, दौड़िकरि आदि।

(३) डिंगल कविता का ऐतिहासिक और साहित्यिक मूल्य

ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच का रचा हुआ डिंगल-काव्य बहुत थोड़ी मात्रा में मिलता है और जो है वह भी बहुत संदिग्ध और साधारण कोटि का। डिंगल कविता का वास्तविक इतिहास उस समय से प्रारंभ होता है जब राजस्थान पर मुसलमानों के आक्रमण होने लग गये थे और देश को संकट से बचाने के लिये यहाँ के राजा-महाराजाओं

को धन-जन का भारी बलिदान करना पड़ रहा था। यह एक भीषण हलचल तथा घोर अशान्ति का युग था और अपने देश, अपनी स्वतन्त्रता एवं अपने धर्म की रक्षा के हेतु उन्हें अहर्निश कमर कसकर तैयार रहना पड़ता था। इसके लिये उन्हें सैन्यबल तथा शस्त्र-बल के अतिरिक्त कवियों की भी आवश्यकता रहती थी जो अपनी ओजस्विनी वाणी एवं वीर-रस पूर्ण कविताओं द्वारा योद्धाओं को प्रोत्साहित कर उनमें देश के नाम पर पतंगों की तरह मर मिटने का साहस भ रते थे। यह काम उस समय चारण और भाट जाति के लोग करते थे।

उच्चकोटि के कवि एवं विद्वान होने के साथ साथ ये चारण-भाट तलवार के भी धनी होते थे और आवश्यकता पड़ने पर रणांगण में उतर कर शत्रुओं से लोहा भी ले सकते थे। चंदवरदाई, दुरसाजी आदि कवि इसी श्रेणी के थे। द्रव्य, जागीर, प्रतिष्ठा इत्यादि के लोभ से ये लोग काव्य कला कौशल की प्राप्ति के लिये शिक्षा और अभ्यास में बहुत समय विताते थे और संस्कृत, प्राकृत आदि कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। इस परिश्रम का फल भी प्रायः उन्हें बहुत अच्छा मिलता था। अपना और अपने पूर्वजों का यश फैलाने वाले समझ कर राजा-महाराजा उन्हें लाख पसाव, कोड़ पसाव आदि के रूप में अतुल धन दान देते और कविराजा, कवीश्वर आदि की उपाधियों से विभूषित कर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाते थे।[1] प्रसिद्ध है कि आमेर के राजा मानसिंह ने छह कोड़ पसाव, बीकानेर के महाराजा रायसिंह ने सवातीन कोड़ पसाव, सिरोही के राव सुरताण सिंह ने एक कोड़ पसाव और मारवाड़ के महाराजा गजसिंह ने चौदह लाख पसाव दिये थे। अजमेर के राजा वछराज गौड़ ने तो कई अरब पसाव तक भी दान में दिये थे। निम्न लिखित प्राचीन दोहा, इस बात का साक्षी है :—

---

१ राजस्थान में चारण-भाटों को जो दान दिया जाता है उसका नाम उन्होंने पसाव (सं० प्रसाद) रखा है। बड़े दान को वे अत्युक्ति से लाख पसाव, कोड़ पसाव आदि कहते हैं। इस तरह के दान देने की प्रथा आज कल बंद सी हो गई। पहले जब लाख पसाव आदि दिये जाते थे तब एक लाख रुपया नक़द नहीं दिया जाता था। हजार-दो हजार के क़रीब रोकड़ रुपया देकर शेष रक़म की पूर्त्ति हाथी, घोड़े, सिरोपाव आदि देकर की जाती थी। छोटा दान

देतां अरब पसाव नित, धिनो गोड़ बछराज।
गढ़ अजमेर सुमेर सूँ, ऊँचो दीसै आज॥

इतना ही नहीं, इन राजा-महाराजाओं की वजह से ये चारण-भाट बाद में अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ इत्यादि मुसलमान बादशाहों के राज दरबारों में भी पहुँच गये थे और वहाँ भी इनका बड़ा सम्मान होता था। इनमें से दुरसा जी आढ़ा, लक्खा जी बारहठ, पीरजी आसिया आदि को-तो उक्त बादशाहों की ओर से बड़े बड़े पुरस्कार और मनसब भी प्राप्त हुए थे।

अपने आश्रयदाताओं के शौर्य्य-पराक्रम के वर्णन में इन कवियों ने 'रासो' 'ख्यात' आदि के नाम से सैकड़ों ग्रंथों की रचना की जिनमें से अधिकांश तो काल-कवलित हो गये और थोड़े बहुत जो बच रहे हैं उनकी रक्षा को भी कोई संतोष जनक-सुव्यवस्था अभी तक नहीं हो सकी है। फुटकर गीत, दोहा, कवित्त आदि तो इतनी प्रचुर मात्रा में नष्ट हो गये हैं और फिर भी इतनी बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं कि जिसका अनुमान लगाना ही हमारे लिये असंभव है।

प्रारंभ में डिंगल काव्य-रचना पर चारण-भाटों ही का एकाधिकार था और ये लोग अपने आश्रयदाताओं के कीर्ति-कथन को ही अपनी कविता का चरम उद्देश्य समझते थे। लेकिन बाद में जब डिंगल भाषा का सम्मान बढ़ा तब मोतीसर, ढाढी, ब्राह्मण, राजपूत, सेवग आदि अन्य जातियों के लोग भी इसमें कविता करने लगे और इसकी विषय-सामग्री में भी परिवर्तन होना शुरू हुआ। धीरे धीरे इसमें ज्योतिष, वेदान्त, वैद्यक, धर्म, नीति, शालिहोत्र आदि अनेक विषयों पर बहुत से ग्रंथ लिखे गये जिनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो संसार के किसी भी साहित्य को गौरव प्रदान कर सकते हैं।

चारण-भाटों की लिखी हुई उपरोक्त वीर गाथाओं के विषय में यहाँ पर इतना सा और भी बतला देना ठीक होगा कि ये लोग अपने जिन आश्रयदाताओं की प्रशंसा में ग्रंथ लिखते थे, प्रायः उनके समसामयिक हुआ करते थे और बहुधा आपबीती तथा आँखों देखी घटनाओं का चित्रण करते थे। अतएव इतिहास की दृष्टि से ये ग्रंथ बड़े उपयोगी हैं। इसमें

लाख पसाव, उससे बड़ा कोड़ पसाव और सब से बड़ा अड़ब पसाव कहलाता था।

सन्देह नहीं कि इनमें कहीं कहीं अतिरञ्जना से काम लिया गया है और जिस ढंग के इतिहास-ग्रंथ आजकल लिखे जाते हैं उस ढंग के ये नहीं है। फिर भी ऐतिहासिक सत्य इनमें बहुत कुछ अंशों में विद्यमान है और यदि कोई निष्पक्ष एवं विवेकशील इतिहासकार चाहे तो क्षत्रिय जाति का, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का, सच्चा इतिहास लिखने के लिये इनमें से पर्याप्त सामग्री निकाल सकता है। इसके सिवा भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी डिंगल की इन वीर गाथाओं का बड़ा महत्व है। क्योंकि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक हिन्दी के बीच का संबंध इसी डिंगल भाषा के द्वारा स्थापित होता है।

विशुद्ध काव्य की दृष्टि से इस विशाल डिंगल साहित्य का कितना मूल्य है, यह विषय भी विचारणीय है। महाकवि मम्मट ने काव्य रचना के धन प्राप्ति, यश प्राप्ति आदि छह उद्देश्य बतलाये हैं।[१] और इन्हीं उद्देश्यों को सामने रख कर डिंगल-काव्य के अधिक भाग की रचना की गई है। लेकिन कविता की कसौटी आज कल बदल गई है। पाश्चात्य विद्वान् मम्मट के उक्त आदर्शों को ठीक नहीं मानते। उनका कहना है कि धन प्राप्त करने की इच्छा से, प्रतिष्ठा के लोभ से, श्रोताओं पर प्रभाव डालने के अभिप्राय से तथा अन्य किसी प्रकार के सांसारिक प्रलोभन से जो कविता की जाती है उसमें वह रस, वह चमत्कार और वह बल कदापि नहीं आ सकता जो स्वान्तः सुखाय कविता करने वाले कवियों की रचना में मिलता है।[२] पाश्चात्य विद्वानों का यह कथन बहुत कुछ ठीक भी है; और शायद यही कारण है कि इन राजाश्रित कवियों की कविता में आत्मानुभूति और आत्म-विस्मृति की वह अक्षय छाप हमें नहीं दिखाई

---

१ काव्यं यशसेऽर्थकृते, व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये, कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

—मम्मट

२ When a peot turns round and addresses himself to another person, when the expression of his emotions is tinged also by that desire of making an impression upon another mind, then it ceases to be poetry and becomes eloquence.

—John Stuart Mill

पड़ती जिसके दर्शन सूर, तुलसी, मीरां आदि भक्त कवियों की कविता में पग पग पर होते हैं। अतः इस दृष्टिकोण से चारण-काव्य का अधिकतर भाग सदोष है। निःसन्देह चारण-भाटों में भी ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने लौकिक काव्य को हेय समझ कर स्वान्तः-सुखाय रचना की है। पर ऐसे कवियों की संख्या एक तरह से न होने के बराबर है।

भाषा—डिंगल कविता की भाषा प्रधान रूप से दो प्रकार की पाई जाती है। खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो आदि वीर गाथा काल के काव्य-ग्रंथों की भाषा बहुत अस्तव्यस्त, बेमेल और डिंगल व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है। इसीलिये राजस्थान के बहुत से साहित्यान्वेषक इन्हें डिंगल के ग्रंथ ही नहीं मानते। लेकिन इनके बाद के ग्रंथों तथा फुटकर कविताओं की भाषा बहुत शुद्ध, संयत एवं प्रौढ़ है और इसमें व्याकरण के नियमों की अवहेलना कम की गई है। फिर भी एक बात जो डिंगल के सभी कवियों में समान रूप से पाई जाती है वह है शब्दों की मन माने ढंग से तोड़ मरोड़। एक ही शब्द को भिन्न भिन्न कवियों ने भिन्न भिन्न प्रकार से तोड़ा है और इस बुरी तरह से तोड़ा है कि आज तो उसके मूल रूप के पहचानने में भी भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कुछ उदाहरण लीजिये :—

शब्द	शुद्ध रूप
जुजठिळ	युधिष्ठिर
अछेरा	आश्चर्य
खत	क्षिति
पथ	पार्थ
वेसा	वेश्या
मेछ	म्लेच्छ
भोण	भवन
अवज	अंबुज
ढेलड़ी	दिल्ली
पाखर	प्रखर
मछर	मत्सर

छंद—डिंगल काव्य में सब से अधिक प्रयोग दोहा-छप्पय का हुआ है। चंदवरदाई के छप्पय तो प्रसिद्ध ही हैं। इस छप्पय-पद्धति का अनु-

अवश्य ऐसे हुए हैं जिनका ध्यान अलंकार-प्रदर्शन की ओर था। परन्तु अलंकार-प्रियता के कारण कहीं भाव-सौन्दर्य्य को ठेस पहुँची हो, ऐसा इनकी कविता से भी नहीं झलकता। हाँ, एक अलङ्कार अवश्य ऐसा है जिसका प्रयोग डिंगल के कवियों ने अत्यधिक मात्रा में किया है और वह है—वयणसगाई। इसे हम हिन्दी के शब्दानुप्रास का एक भेद कह सकते हैं। अनुप्रास की तरह इसके भी कई भेद-उपभेद हैं। वयणसगाई का साधारण नियम यह है कि किसी छंद के प्रथम शब्द का आरम्भ जिस वर्ण से हुआ हो उसके अंतिम शब्द का आरंभ भी उसी वर्ण से होना चाहिये। जैसे :—

(१) अकबर गरब न आँण, हींदू सह चाकर हुआ।
दीठो कोई दिवाँण, करतो लटका कटहड़े॥

(२) नर जेथ निमाणा निजली नारी, अकबर गाहक बट अबट।
चौहटे तिणजायर चीतोड़ो, वेचै किम रजपूत बट॥

डिंगल के रीति-ग्रंथों में वयणसगाई का निर्वाह न होना कोई दोष नहीं माना है। परन्तु प्राचीन कवियों ने और विशेषतः मध्यकालीन कवियों ने इसका ऐसी दृढ़ता के साथ पालन किया है कि परवर्ती कवियों के लिये यह एक काव्य-नियम सा बन गया और छोटे-बड़े सभी कवि इसके नियमों का निर्वाह करते रहे। यदि कोई कवि वायणसगाई का निर्वाह किसी स्थान पर न कर सकता तो वह काव्य दोष तो नहीं माना जाता था, पर उसकी कवित्व शक्ति की कमज़ोरी का सूचक अवश्य समझा जाता था। वंशभास्कर का रचयिता सूर्यमल पहिला कवि था जिसने इस बात का अनुभव किया कि वयणसगाई का पल्ला पकड़ने से भाव के स्पष्टीकरण में कठिनता होती है और कभी कभी रसोद्रेक में भी बाधा पहुँचती है। इसलिए उसने इस परंपरागत काव्यरीति की उपेक्षा की। लेकिन अपने समकालीन कवियों के रोष का भय उसे भी था। अतः अपने रचे 'वीर सतसई' नामक ग्रंथ के प्रारंभ में निम्नांकित दोहा लिखकर उसने अपनी सफाई दी :—

वयण सगाई वाळिवाँ, पेखीजै रस पोस।
वीर हुतासण बोळ में, दीसे हेक न दोस॥[1]

---

१ अर्थ—वयणसगाई के नियम जो जला देने से वीररस का

रस—डिंगल काव्य में वीररस का प्राधान्य है। शृङ्गार, शान्त आदि अन्य रसों का भी निरूपण मिलता है, पर अपेक्षाकृत बहुत कम। वस्तुतः डिंगल कविता का तीन चौथाई भाग वीर रस ही से ओत प्रोत है। हिन्दी में तो वीर रस का एक तरह से अभाव ही समझना चाहिये। लेकिन संस्कृत आदि अन्य भारतीय भाषाओं की वीररस की कविता के साथ भी यदि डिंगल की वीररस की कविता की तुलना की जाय तो वह अधिक उच्च कोटि की सिद्ध होगी, इसमें कोई संदेह नहीं। इसका कारण भी है। वह यह कि डिंगल के कवि वीरों के देश में पैदा हुए थे, वीरता के वायुमंडल में पले थे और स्वयं भी वीर होते थे। इसलिये अपनी कविता में भी वे वास्तविकता का जीवन फूँक सके हैं। इसके विपरीत संस्कृत आदि के कवि रणांगण की कटाकटी से कोसों दूर किसी शान्त वातावरण में रहते थे और सुनी सुनाई बातों के आधार पर वीररस के चित्र अंकित करने की कोशिश करते थे जो बहुधा अस्पष्ट, अस्वाभाविक और अधूरे हुआ करते थे। कारण, उनकी अनुभूति को प्रत्यक्षानुभव का सहारा तनिक भी न होता था। अतएव योद्धा जिस समय शत्रु पर वार करता है उसकी तलवार बिजली के समान दिखाई पड़ती है, वीरगण पहाड़ी की तरह डटे हुए हैं इत्यादि ऊपरी बातों का वर्णन तो उन्होंने किया और बहुत अच्छा किया पर वीर-वीरांगनाओं के हृदय के गम्भीरतर भावों का विश्लेषण उनसे न हो सका। डिंगल के कवियों ने इन मनोभावों को भी व्यक्त किया है और ऐसी सरल भाषा में इतनी सफलता के साथ कि पढ़ते ही मन मुग्ध हो जाता है।

उदाहरण देखिये :—

धव घावाँ घकिया घणाँ, हेली आवे दीठ।
मारगियो कंकू वरण, लीलो रंग मजीठ ॥१॥[1]

पोषण ही दिखाई पड़ता है। उस हुतासन (अग्नि) के रंग में दोष तो एक भी नहीं दिखाई देता।

१ हे सखी! घावों से खूब लथपथ पति आते हुए दिखाई दे रहे है। खून के गिरने से सारा रास्ता कुंकुम के वर्ण का और उनका श्वेत घोड़ा मजीठी रङ्ग का हो गया है ॥१॥

पिऊ केसरियाँ पट किया, हूँ केसरियाँ चीर।
नाहक लायो चूँदड़ी, बळती बेळा वीर ॥२॥
पंथी हेक संदेसड़ो, बावल नै कहियाह ।
जायाँ थाळ न वज्जिया, टामक टहटहियाह ॥३॥[१]

डिंगल की वीररस की कविता में एक विशेषता और भी पाई जाती है। संस्कृत के कवियों ने स्त्रियों को शृंगार रस के आश्रय-आलंबन के रूप में ही विशेषकर के ग्रहण किया है और वीररस के लिये अनुपयुक्त समझकर उनकी बड़ी उपेक्षा की है। वे दिन रात अपने चरित्रनायकों के पीछे ही लगे रहे और कभी एक क्षण के लिये भी पीछे मुड़कर यह न देखा कि युद्धार्थ गये हुए वीर नायक की अनुपस्थिति में उसकी वीरपत्नी की घर पर क्या दशा है लेकिन डिंगल के कवि उन्हें न भूले। पद्मिनी के समान असंख्य वीर ललनाओं के उदाहरण सामने होते हुए वे भूलते भी कैसे ? अतएव वीर क्षत्रियाणियों की मौलिक भावनाओं को भी उन्होंने अपनी रचनाओं में ला उतारा, जो विश्व साहित्य को डिंगल के कवियों की एक अपूर्व देन है। दो एक सूक्तियाँ देखिये। पति युद्ध में गया हुआ है। पत्नी क्या सोचती है। मनोभावों का अन्तर्द्वन्द्व देखने ही योग्य है :—

नायण आज न मांड पग, काल सुणीजै जंग।
धारां लागीजै धणी, तो दीजे घण रंग ॥१॥[२]

---

१ मेरे पति ने युद्ध में जाने के लिये केसरिया बागा पहिन लिया है और मैंने भी सती होने के लिये केसरिया रङ्ग की साड़ी ओढ़ ली है। हे भाई! ऐसे वक्त में तू व्यर्थ ही क्यों इस चूंदड़ी को लेकर यहाँ आया है ॥२॥ हे पथिक! मेरा एक सन्देशा तू मेरे पिता को कह देना। जिस समय में पैदा हुई थी, मेरे निमित एक थाली भी नहीं बजाई गई पर इस समय जब कि मैं सती होने के लिये जा रही हूँ मेरे आगे ढोल-नगाड़े बज रहे हैं ॥३॥

२ हे नाइन! तू आज मेरे पैरों को (महावर आदि से) मत रँग। कल युद्ध सुना जाता है। यदि स्वामी मारे जायँ तो फिर (सती होने के समय) खूब रंग देना ॥ १ ॥

ऊभी गोख अवेखियौ, पेलां रो दळ सेर ।
पड़ियौ धव सुणियौ नहीं, लीधौ धण नाळेर ।।२।।
विण मरियाँ विण जीतियाँ, जो धव आवै धाम ।
पग पग चूड़ी पाछटूँ, तो रावत री जाम ।।३।।[1]

डिंगल काव्य में वीररस की प्रधानता देखकर कुछ लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि डिंगल भाषा वीररस के लिये जितनी उपयुक्त है उतनी शृंगार आदि अन्य रसों के लिये नहीं है। लेकिन उनका यह विचार भ्रमात्मक है वीररस के अतिरिक्त दूसरे रसों की भी मार्मिक कविता डिंगल में हुई है और हो सकती है। प्रमाण स्वरूप दो एक दूसरे रसों के भी नमूने आगे दिये जाते हैं।—

शृंगाररस :—

बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव ।
जबही बरसइ घण घणउ, तब ही कहइ पियाव ।।

(पपीहा और विरहिणी दोनों ही का एक स्वभाव है। जब जब मेघ बरसता है तभी ये दोनों "पी आव," "पी आव" पुकारते हैं।)

साजन आया हे सखी, ज्यां की जोती बाट ।
थाँभा नाचै, घर हँसै, खेलण लागी खाट ।।

(हे सखि! जिन प्रीतम की प्रतीक्षा में थी, वे आज आ गये हैं। खम्भे नाच रहे हैं, घर हँस रहा है और खटिया खेलने लगी है।)

कबरी किरि गुन्थित कुसुम करम्बित
जमुण फेण पावन्न जग ।
उतमंग किरि अम्बर आधो अधि
माँग समारि कुँआर मग ।।

(फूल दे देकर गुँथी हुई (रुक्मिणी की) चोटी मानो जग को

---

१ झरोखे में खड़ी हुई वीर पत्नी ने देखा कि शत्रु-दल अधिक प्रबल है। अतः पति के धराशायी होने के समाचार सुनने के पहिले ही उसने सती होने के लिये नारियल अपने हाथ में ले लिया ।। २ ।। यदि पति बिना विजयी हुये या बिना मरे घर आये तो मैं पग-पग पर चूड़ियाँ तोड़-फोड़कर बिखेर ... राजपूत की कन्या हूँ ।। ३ ।।

पवित्र करने वाली यमुना के फेन हैं और मस्तक के बीचो बीच सँवारी हुई माँग मानों आकाश-स्थित आकाश गङ्गा है।)

शान्तरस—

पान झड़ंता देख कर, हँसी ज कूंपळियाँह।
मो बीती तुझ बीतसी, धीरी बापड़ियाँह॥

(पत्तों को झड़ते हुए देखकर कोपलें हँसने लगीं। इस पर पत्तों ने कहा अरी बेचारियो, ठहर जाओ; जो हम पर बीती है वही तुम पर भी बीतेगी।)

यही अँगना यहि देहरी, यही ससुर को गाँव।
दुलहन-दुलहन टेरतां, बुढ़िया पड़ गयो नाँव॥

हास्यरस—

राजा रावण जनमियो, दस मुख एक शरीर।
जननी ने सांसो भयो, किण मुख घालूं खीर॥

(राजा रावण ने जन्म लिया। उसके शरीर एक पर मुँह दस थे। माता संशय में पड़ गई कि उसको स्तन-पान किस मुँह से कराया जाय।

मूँड मुँडायां तीन गुण, मिटी टाट की खाज।
बाबा वाज्या जगत में, मिल्यो पेट भर नाज॥

(मूँड़ मुँड़ाने से तीन लाभ होते हैं—सिर की खाज मिटती है, 'बाबा' कहलाते हैं और खाने को पेट भर नाज मिलता है।)

करुणरस—

घणाँ घाट लंघणां, नदी परबत नद नाळा।
वन है वेटा विकट, पंथ चालणों उपाळाँ॥
कहर भूख काढ़णी, गिणे दुख किसा गुणीजै।
कहूँ बात यह कँवर श्रवण, वै भ्रात सुणीजै॥
दंती वराह नाहर दनुज, सो तिण ठां रह सावता।
रे पुत्र घणी विध राखजो, जनक-सुतारा जावता॥

(कौशल्या राम और लक्ष्मण से कहती है—बहुत सी घाटियों, नदियों, पर्वतों, नालों और समुद्रों को लाँघना होगा। हे पुत्र! वन जाना बड़ा कठिन काम है और वहाँ रास्ते में बिना जूतों ही के चलना होगा। भूख बहुत सहनी होगी। कौन वहाँ के दुखों को गिन सकता है। मैं जो यह

बात कह रही हूँ वह दोनों भाई कान लगाकर सुनो। हाथी, सूअर, सिंह और राक्षस ये सब वहाँ रहते हैं। इसलिये हे पुत्र ! बहुत प्रकार से सीता की इनसे रक्षा करना।)

रौद्र रस—

विळकुळियौ वदन जेम वाकारयौ
सङ्ग्रहि धनुष पुणच सर सन्धि ।
क्रिसन रुकम आउध छेदण कजि
वेलखि अणी मूठि द्रिठि बन्धि ॥

(रुक्मि ने ज्योंही ललकारा त्योंही (कृष्णका) मुख लाल हो गया और धनुष को लेकर तथा प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाकर रुक्मि के शस्त्रों को काटने के लिये श्रीकृष्ण ने बाण के फर को मुट्ठी में और उसकी नोक को दृष्टि में बाँधा।)

वीभत्स रस—

कांपिया उर कायराँ असुभकारियौ
गाजंते नीसाणे गड़ड़ै ।
ऊजळियाँ धाराँ ऊवड़ियौ
परनाळे जल रुहिर पड़ै ॥

(नगारों की गड़गड़ाहट रूपी मेघ-गर्जन से रणभीरु रूपी अशुभचिन्तकों के हृदय काँपने लगे और शस्त्रों की चमकीली धाराओं से उमड़ते हुए रुधिर रूपी जल के पनाले बहने लगे।)

दोषवर्णन—काव्य के मुख्य अर्थ की प्रतीति को हानि पहुँचाने वाली वस्तु को दोष कहते हैं। डिंगल में दोष ग्यारह प्रकार के माने गये हैं। नीचे हम डिंगल के प्रसिद्ध रीति ग्रंथ 'रघुवरजस-प्रकाश' से दो छप्पय उद्धृत करते हैं जिसमें सभी तरह के दोषों के नाम और उनके उदाहरण आ गये हैं :—

कहियौ मैं कै कहूँ, किसूँ अंधौ तैं कहियै ।
लित्ता पान धनंख, राम छबकाळो लहियै ॥
अज अजेव जगईस, निमौतै हीण दोष निज ।
रतनद तिरत कबंध, सार इम चली निनंगसुज ॥
कवि छंदो भंग पंग कह, तुक धर लछ्छण तोर मैं ।
जत विरूध जांगड़ रो दुहौ, वणै लघु साणोर मैं ॥१॥

बिस्नु नाम कुल बिस्नु, बिस्नु सुत मित्र अपस बद।
कच अहि मुख ससिलंक, स्यंघ कुच कोक नाळ छिंद॥
मनष्यां मत बिललाय, गाय प्रभुजी पखतूटळ।
रांमण हणियौ राम, गूह[1] खाधो तारक षळ॥
थण भांत कहै बहरो यळा, महपन में पय राम रै।
तुक एण अमंगळ आद अंत, कवियण विधि गुण नह करै॥[2]

(१) अंध—जहाँ उक्त विषय का निर्बाध निर्वाह न हो सके तथा किसी चरण में उक्त विषय सम्मुख और किसी में पराङ्मुख हो वहाँ यह दोष माना जाता है। जैसे :—

"कहियौ मैं कै कहूँ, किसूँ अंधौतें कहियै"

यहाँ "कहियौ,, शब्द के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई बात पहले कही जा चुकी है। लेकिन बाद में "कहूँ" आया है जिससे यह ध्वनि निकलती है कि बात अभी तक कहनी है। इसके सिवा यहाँ इस बात का भी पता नहीं लगता कि "मैं" से अभिप्राय कवि से है अथवा किसी दूसरे व्यक्ति से। फिर "किसूं, आया है जिससे यह स्पष्ट नहीं होता कि कहने वाला अपनी बात किसी के पक्ष में कह रहा है अथवा विपक्ष में। अतः यहाँ पर अंध दोष है।

(२) छबकाळ—विरुद्ध भाषाओं अथवा विभिन्न भाषाओं को डिंगल में मिला देने को छबकाळ दोष कहते हैं। जैसे :—

"लित्ता पान धनंख"

इसमें 'लित्ता' शब्द पंजाबी का, 'पान' हिन्दी का और 'धनंख' डिंगल का है। इसलिये छबकाळ दोष है।

(३) हीन—जहाँ कोई निश्चित अर्थ न हो सके अथवा जहाँ अर्थ का अनर्थ होने की संभावना हो वहाँ यह दोष होता है। जैसे :—

"अज अजेव जगईस"

यहाँ 'अज' से कवि का अभिप्राय शिव से है अथवा ब्रह्मा से अथवा

---

१ गूह = कार्तिकस्वामी। खाधो = खाया, मारा। तारक = तारकासुर नामक राक्षस।

२ किशनजी आढ़ा; रघुवर जस प्रकास (अप्रकाशित), पृ० ६५।

विष्णु से, यह बात स्पष्ट नहीं है। क्योंकि तीनों ही अजन्मा और जगत के ईश हैं।

(४) निनंग—जहाँ क्रम भंग वर्णन हो अर्थात् जो बात पहले कहने की हो उसे बाद में कही हो और जो बात बाद में कहने की हो उसका उल्लेख पहले कर दिया गया हो, वहाँ यह दोष होता है। जैसे :—

"रत नद तिरत कबंध सार इम चली निनंग सुज"

पहले तलवारें चलती हैं, बाद में रक्त बहता है और फिर कबंध तैरते हैं। लेकिन उपरोक्त पंक्ति में उलटा वर्णन किया गया है। रक्त की नदियों में कबंध पहले तैरते हैं और तलवार बाद में चलती है। अतः निनंग दोष है।

(५) पांगळो—पिंगल शास्त्र द्वारा निश्चित नियमों के विरुद्ध किसी छंद के चरण में कम-अधिक मात्राओं का होना पाँगळो दोष कहलाता है।

(६) जात विरुद्ध—यदि किसी छंद के भिन्न भिन्न चरण भिन्न भिन्न ज़ाति के छंदों के हों तो वहाँ यह दोष होता है।

(७) अपस—यदि किसी बात को सीधी तरह से न कहकर घुमा फिरा कर कहा जाय तो वहाँ यह दोष होता है। जैसे :—

"बिस्नु नाम कुल बिस्नु, बिस्नु सुत मित्र अपस बद"

यहाँ सीधा 'रामचन्द्र' न कहकर, बिस्नु नाम (हरि) हरि का नाम (सूर्य) उनका सुत (सुग्रीव) और उनका मित्र (रामचन्द्र) कहा गया है। अतः अपस दोष है।

(८) नाल छेद—काव्य-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध किसी विषय का मनमाने ढंग से वर्णन करना नाल छेद दोष कहलाता है। जैसे :—

"कच अहिमुख ससि लंक स्यंघ कुच कोक नाल छिद"

यहाँ पहले चोटी का और बाद में मुख का वर्णन किया गया है जो नखशिख वर्णन की परिपाटी के खिलाफ़ है। इसी तरह कमर और कुच के वर्णन में भी क्रम का भंग हुआ है। अतएव नाल छेद दोष है।

(९ पषतूट—जहाँ छंद के प्रथम दो चरणों में कच्ची जोड़ और दूसरे दो में पक्की जोड़ हो वहाँ यह दोष होता है।[1]

---

१ कच्ची जोड़ उसे कहते हैं जिसमें शब्दानुप्रास नहीं आता है और पक्की जोड़ में शब्दानुप्रास होता है। जैसे:—

(१०) बहरो—जहाँ शब्द योंजना ऐसी बेढंगी हो कि शब्दों का दुतरफा अर्थ निकल कर भ्रम पैदा हो जाय, वहाँ यह दोष होता है। जैसे :—

"रामण हणियौ राम"

इससे 'राम ने रावण को मारा' और 'रावण ने राम को मारा, ये दोनों अर्थ निकलते हैं। इसलिये 'बहरो' दोष है।

(११) अमंगळ—यदि किसी छंद के किसी चरण के पहले और अन्तिम अक्षर के मिलने से कोई अमंगल सूचक शब्द बने तो वहाँ पर यह दोष माना जाता है। जैसे :—

"महपन में पय रामरै"

छप्पय की इस तुक का पहला अक्षर 'म' और अन्तिम अक्षर 'रै' है। इनके संयोग से 'मरै' शब्द बनता है, जो अशुभ है। अतः यहाँ प 'अमंगळ' दोष है।

(४) डिंगल-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

डिंगल भाषा के क्रमागत विकास और उसकी साहित्यिक प्रौढ़ता को ध्यान में रखकर यदि डिंगल साहित्य के ६०० वर्षों के इतिहास का विभाजन किया जाय तो वह निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त हो सकता है :—

आरम्भकाल—(सं० १०००—१४००)
मध्यकाल—(सं० १४००—१८००)
उत्तरकाल—(सं० १८००—२००२)

आरंभकाल (सं० १०००—१४००)

आदि काल की साहित्यिक सामग्री बहुत न्यून मात्रा में उपलब्ध होती है और जो है वह भी बहुत संदिग्ध और अव्यवस्थित है। इस समय के डिंगल के बहुत से कवियों की गणना हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखकों

"तीर शेलाँ छुराँ भींक तरवारियाँ"
—कच्ची जोड़

"तहक नीपाण गिरवाण हरण तन"
—पक्की जोड़

ने अपने वीर गाथा काल के कवियों में भी की है। पर इस सम्बन्ध में उन्होंने बड़ा धोखा खाया है। इसका मुख्य कारण है डिंगल भाषा से उनकी अनभिज्ञता। डिंगल भाषा में ही कुछ ऐसी विशेषता है कि बहुत पीछे की होते हुए भी वह बहुत प्राचीन दिखाई पड़ती है। वंशभास्कर, केहर प्रकाश आदि ग्रंथ इस कथन के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। ये ग्रंथ आधुनिककाल में लिखे गये हैं, पर भाषा से कई शताब्दियों पहले के प्रतीत होते हैं। अतएव डिंगल के किसी भी ग्रंथ के रचना-काल का निर्णय करते वक्त इतिहास, भाषाशास्त्र इत्यादि के अतिरिक्त डिंगल व्याकरण की दृष्टि से भी उस पर विचार होना आवश्यक है। आगे इस काल के माने जाने वाले कवियों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। इस विषय में जो नवीन शोध हाल ही में हुए हैं उनसे भी सहायता ली गई है।

(१) दलपत विजय—इनका लिखा खुंमाण रासो नामक एक ग्रंथ प्रसिद्ध है। ये मेवाड़ के राजा खुंमाण (दूसरे) के समकालीन माने जाते हैं और कहा जाता है कि ये जाति के भाट थे। खुंमाण ने सं० ८७० से ९०० तक राज्य किया था। अतः उपरोक्त कथन के अनुसार यही समय दलपत विजय का भी ठहरता है। लेकिन हाल ही में श्रीयुत अगरचंद नाहटा का खुमाण रासो पर जो एक लेख नागरीप्रचारिणी पत्रिका में निकला है उसमें उन्होंने अभिहित सभी बातों को निर्मूल सिद्ध किया है।[१] नाहटा जी के पास खुमाण रासो की एक हस्तलिखित प्रति भी मौजूद है। इसमें २६० पृष्ठ हैं। इस प्रति के आधार पर नाहटा जी ने बतलाया है कि दलपत विजय जाति के भाट नहीं, बल्कि तपागच्छ के कोई जैन साधु थे, जिन्होंने सं० १७३० और १७६० के बीच किसी समय खुंमाणरासो की रचना की थी। नाहटा जी का उक्त कथन ठीक ही है, क्योंकि भाषा भी खुंमाणरासो की सं० १७०० के पहले की प्रतीत नहीं होती। नमूना देखिये :—

आव भाव अंबाव, भगति कीजे भारत्ति।
जाग जाग जगदंब, संत सानिध सकत्ति॥
सुप्रसन्न होय सुरराय, वयण वाचावर दीजे।
बालक बेलें बाँह, प्रीत भर प्यालो पीजे॥

१ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; वर्ष ४४, अंक ४, पृ० ३८७-३९८।

महाराज राज राजेश्वरी, दलपति सूँ कीजे दया।
धन मोज महिर मातंगिनी, माय करो मोसूं मया॥

(२) साँईदान—ये सिलका गोत्र के चारण मेवाड़ के सिगला नामक गाँव के रहनेवाले थे। इन्होंने 'सम्वतसार' नाम का एक ग्रंथ बनाया था। मिश्रबन्धु विनोद तथा हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट में इनका रचना-काल सं० १२०० के आसपास माना गया है, जो ग़लत है। ग्रंथ की भाषा सं० १६०० के पहले की नहीं है। 'संवतसार वर्षा-विज्ञान का ग्रंथ है। इसकी भाषा बोल-चाल की राजस्थानी है। एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है:—

मेघमाल जउ सास्त्र कउ, अरु जोतिस कउ तंत।
जिन देख्याँ आगम कथइ, सँमतसार यो ग्रंथ॥
पारवती कीनौं प्रसन, हे देवन के देव।
सुरभष दुरभष परत हैं, सो भव कहिये भेव॥
महादेव उत्तर दियौ, सुनहु उमा चित लाय।
सुरभष दुरभष कौ तुम्हें, देऊँ भेद बताय॥

(३) नरपति नाल्ह—इनकी जाति, जन्म तिथि आदि के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। कोई इन्हें राजा, कोई भाट और कोई व्यास ब्राह्मण बतलाते हैं। इनके रचे बीसलदेव रासो का स्थान हिन्दी साहित्य में बड़े महत्त्व का माना जाता है। इसकी लगभग पन्द्रह हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमें बहुत पाठान्तर है और रचना-काल भी भिन्न-भिन्न प्रतियों में भिन्न भिन्न दिये हुए हैं। इनमें दो प्रतियाँ मुख्य हैं, जो क्रमशः जयपुर और बीकानेर से मिली हैं। पहली प्रति में ग्रंथ का निर्माण-काल सं० १२१२ और दूसरी में सं० १०७३ दिया हुआ है।

(१) बारह से बहोत्तराँ मँझारि, जेठ बदी नवमी बुधवारि।
—जयपुर

(२) संवत सहस तिहत्तर जाँणि, नाल्ह कवीसर रसिय बखाणि।
—बीकानेर

जब तक यह दूसरी प्रति प्राप्त नहीं हुई थी, अधिकांश विद्वान बीसलदेव रासो का रचना-काल सं० १२१२ ठीक मानते थे और नाल्ह को बीसलदेव चतुर्थ (सं० १२००-२१) का समकालीन बतलाते थे। परन्तु इस द्वितीय प्रति के कारण अब कुछ लोग उनका बीसलदेव द्वितीय (सं० १०३०-५६)

के आसपास होना मानने लगे हैं और रासो का निर्माण-काल सं० १०७३ ठीक बतलाते हैं। यह विषय विवादग्रस्त है और जब तक दूसरी प्रति भी प्रकाशित होकर सामने न आ जाय तब तक उपरोक्त मतों में से एक को सही और दूसरे को ग़लत बतलाना कठिन है। नागरी-प्रचारिणी सभा काशी की ओर से बीसलदेव रासो का जो संस्करण निकला है वह उल्लिखित जयपुर वाली प्रति के अनुसार छापा गया है और उसमें ग्रंथ का रचना-काल सं० १२१२ दिया हुआ है। पर उसकी भाषा को देखकर तो उसे सोलहवीं शताब्दी के पहले का ही रचा हुआ मानने को जी नहीं चाहता, सं० १२१२ तो बहुत दूर की बात है। इस प्रसंग में यहाँ पर इतना और भी बतला देना समीचीन जान पड़ता है कि डा० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा ने हम्मीर काव्य (संस्कृत) के रचयिता नयनचन्द्र सूरि (सं० १३५८) और नाल्ह को समसामयिक माना है और इसलिये ओझा जी के अनुसार रासो का निर्माण-काल सं० १३५८ के आसपास ठहरता है।[1]

बीसलदेव रासो एक छोटा सा वर्णनात्मक काव्य है जो २१६ छंदों में समाप्त हुआ है। इसकी भाषा बोल-चाल की राजस्थानी, कविता बहुत साधारण तथा कथा-भाग अधिकतः अनैतिहासिक है। और छंदोभंग तो इतना है कि समस्त ग्रंथ में शायद ही कोई छंद ऐसा निकले जो पिंगल-शास्त्र की दृष्टि से ठीक हो। इसकी कविता का नमूना देखिये :—

प्रणमूं अणुमन्त अंजनी-पूत।
भूल्यो आखर आणज्यो सूत॥
कर जोड़े नरपति कहइ।
धार थी आवज्यो भोज नरेस॥

(४) चंदबरदाई—इनके रचे पृथ्वीराज रासो के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। कविराजा श्यामलदास, डा० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा आदि इतिहासवेत्ताओं ने इसे सुनी सुनाई बातों के आधार पर सं० १६०० के आसपास का लिखा हुआ एक जाली ग्रंथ माना है। इसके विपरीत बाबू श्याम सुन्दर दास, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित इत्यादि विद्वान इसे पृथ्वीराज के समय की रचना बतलाते हैं और कहते हैं कि अभी जो ग्रंथ पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रचलित है उसमें बहुत सा अंश

---

१ 'राजपूताने का इतिहास; पृ० १९ (भूमिका)।

पीछे से जोड़ा गया है। पं० मथुरा प्रसाद जी ने सोलनवाली प्रति को असली रासो माना है और उसके थोड़े से अंश को प्रकाशित भी करवाया है।[1] इसकी भाषा बहुत परिमार्जित एवं व्याकरण सम्मत है और छंदोभंग भी इसमें नहीं है। लेकिन भाषा इसकी भी पृथ्वीराज के समय की भाषा नहीं इतना निःसंकोच भाव से कहा जा सकता है। भाषा की कसौटी पर सिर्फ वे चार छप्पय खरे उतरते हैं, जो मुनि जिनविजय जी को हाल ही में मिले हैं। इनके मिलने से अधिक कुछ नहीं तो कम से कम ओझा जी आदि विद्वानों का यह कथन तो ग़लत सिद्ध हो गया है कि चंद नाम का कोई कवि पृथ्वीराज के राजत्व काल में हुआ ही नहीं। इन चार छप्पय में से एक को हम नीचे उद्धृत करते हैं :—

त्रिण्हि लक्ख तुषार सबल पाषरिअइं जसु हय।
चऊदसय मयमत्त दंति गज्जंति महामय॥
बीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर।
ल्हूसडु अरु बलु यान संख कु जाणइ तांहपर॥
छत्तीस लक्ख नराहिवइ विहिविनिडिओ हो किम भयउ।
जइचंद न जाणउ जल्हूकइ गयउ कि मूउ कि धरि गयउ॥

(५) जल्हण—ये चंदबरदाई के चतुर्थ पुत्र थे। इनका लिखा हुआ कोई ग्रंथ अभी तक नहीं मिला। लेकिन प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज रासो में निम्नलिखित दोहे के बाद का जो अंश है, वह इन्हीं का लिखा हुआ है :—

आदि अंत लगि वृत्ति मन, व्रन्नि गनी गनराज।
पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चले गज्जन नृप काज॥

यदि इस कथन में कुछ सत्यांश हो तो इससे इनका भी एक उच्चकोटि का कवि होना सिद्ध होता है। क्योंकि पृथ्वीराज रासो का अंतिम भाग जो इनका रचा बतलाया जाता है, काफ़ी मार्मिक और सरस है। इनका एक छप्पय देखिये :—

मरन चंद वरदाइ, राज पुनि सुनिग साहि हनि।
पुहुपंजलि असमान, सीस छोड़ सुदेवतनि॥
मेछ अवाद्धित धरनि, धरवि सब तीय सोह सिग।
तिनहि तिनहि संजोति, जोति हि संपातिग॥

---

१ प्रकाशक: मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर।

रासो असंभ नव रस सरस, चंद छंद किया अमिय सम।
शृंगार, वीर, करुना बिभछ, भय अद्भुत हसंत सम॥

(६) नल्लसिंह भाट—इनका भी विशेष वृत्त ज्ञात नहीं है। इनके रचे विजयपाल रासो से केवल इतना ही पता लगता है कि ये विजयगढ़ (करौली राज्य) के यदुवंशी राजा विजयपाल के आश्रित थे। विजयपाल रासो का थोड़ा सा अंश प्राप्त हुआ है। इसमें सिद्धराव नामक किसी राजा के साथ विजयपाल की लड़ाई का वर्णन है। इस युद्धका समय नल्लसिंह ने सं० १०९३ दिया है। पर इसमें बहुत सी इतिहास विरुद्ध बातें भी भरी हुई हैं जिससे स्पष्ट है कि विजयपाल रासो बहुत पीछे की रचना है। भाषा, शैली आदि से भी यह ग्रंथ इतना प्राचीन नहीं प्रतीत होता। कुछ विद्वानों ने इसका निर्माण काल सं० १३५५ के आस-पास माना है। लेकिन हमारे ख़याल से यह और भी बाद का लिखा हुआ है। इसकी भाषा-कविता का नमूना देखिये :—

जुरे जुध यादव पङ्ग मरद्द, गहीकर तेग चढ्यो रणमद्द।
हँकारिख जुद्ध दुहूँ दल सूर, मनौ गिरि सीर जलथ्थरि पूर॥
हलौं हिल हाँक बजी दल मद्धि, भई दिन ऊगत कूक प्रसिद्धि।
परस्पर तोप बहैं विकराल, गजैं सुर भुम्मि सरग्ग पताल॥

उपरोक्त कवियों के अतिरिक्त इस काल के थोड़े से और कवियों का भी पता लगा है। इसमें कवि सोम प्रभाचार्य्य, जैन साधु जिणवल्लह, हल्ल, ऊजळी, सारंगधर और जज्जल मुख्य हैं। राजस्थान का सर्वप्रिय प्रेमगाथात्मक काव्य 'ढोला मारू रा दूहा' भी इसी काल की रचना है।

मध्यकाल (सं० १४००—१८००)

मध्यकाल डिंगल साहित्य का स्वर्ण-युग माना जाता है। इस काल में डिंगल भाषा अपने पूर्ण प्रौढ़त्व को प्राप्त हुई और उसमें सैकड़ों ग्रंथ तथा अगणित फुटकर गीत, दोहे आदि लिखे गये। राजस्थान के कुछ विद्वान इस समय के डिंगल ग्रंथों को ही विशुद्ध डिंगल के ग्रंथ मानते हैं। इस काल में एक नई बात यह हुई कि पद्य ग्रंथों के अतिरिक्त थोड़े से गद्य ग्रंथ भी इस भाषा में रचे गये। इस समय के बहुत प्रसिद्ध कवियों का विवरण नीचे दिया जाता है :—

(१) बादर—ये ढाढी जाति के कवि मारवाड़ के राव वीरमजी के आश्रित थे। इनका रचना-काल सं० १४४० के आस-पास ठहरता है।

इन्होंने 'वीरमायण' नाम के एक ग्रंथ की रचना की जिसमें वीरमजी के वीरोचित कार्यों का वर्णन है। इस ग्रंथ की भाषा का नमूना देखिये :—

दळ अणकळ दीठेह, वीरह वीरम ये कही।
वळियो रण वाधेह, मिळियो सारां मोहरी ॥[1]

(२) श्रीधर—ये 'रणमल-छंद' के रचयिता प्रसिद्ध हैं। इस काव्य का समय सं० १४५४ निश्चित किया गया है। इसमें ईडर के राठौड़ राजा रणमल के शौर्य-पराक्रम का वर्णन है। समस्त ग्रंथ वीररस से लबालब भरा हुआ है। भाषा भी इसकी विषयानुकूल और संयत है :—

रउद्द सद्द आसमुद्द साहसिक्क सूरइ।
कठोर थोर घोर छोर पारसिक्क पूरइ ॥
अहंग गाह अंग गाहि गालि वाल किज्जइ।
विछोहि जोइ तेह नेहि मेच्छ लोडि लिज्जइ ॥

(३) सिवदास—ये गागरोनगढ़ (कोटा राज्य) के राजा अचळदास खीची के आश्रित थे। इन्होंने 'वचनिका अचळदास खीची री' नामक एक ग्रंथ सं० १४७० के आस-पास बनाया था। इसमें मांडू के बादशाह के साथ अचळदास के युद्ध का वर्णन है। इसकी भाषा बहुत प्रौढ़ तथा कविता बहुत सरस और भावपूर्ण है :—

एकइ वन्न वसंतड़ा एवड़ अंतर काय।
सिंघ कवड्डी ना लहै, गयवर लाख विकाय ॥
गयवर गळे गळथ्थियो, जहँ खँचे तहँ जाय।
सिन्घ गळथ्थण जे सहै, तो दह लाख विकाय ॥[2]

(४) सूजो—ये बीठू खाँप के चारण थे। इन्होंने 'राउ जइतसी रउ छंद' नामक एक ग्रंथ की रचना की थी, जिसका निर्माण-काल सं० १५६१ और १५९८ के बीच का माना गया है। इसमें बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान के साथ बीकानेर के राव जइतसी की लड़ाई का वर्णन है।

---

१ अणकळ = अपार। दीठेह = देखकर। वळियो रण वाधेह = रण के लिये बाध्य होकर। मिळियो सारां मोहरी = सब से आगे जाकर भिड़ा।

२ वसंतड़ा = रहनेवाले। एवड़ = इतना। काय = क्यों। कवड्डी = कौड़ी। गळथ्थियो = बंधन। दह = दस।

इतिहास की दृष्टि से यह ग्रंथ बड़े महत्त्व का है। इसमें कुल मिलाकर ४०१ छंद हैं। इसकी भाषा बहुत प्रौढ़ तथा परिमार्जित है और वर्णन-शैली भी सजीव है। कवि ने 'बयणसगाई' का निर्वाह बड़ी कट्टरता के साथ किया है :—

रउद्र दल रहच्चइ जइतराउ।
होहू कि मेह बाजइ हलाउ॥
ताइयाँ उरे धइ कूँत तेह।
मारुअउ राउ मातउ कि मेह॥

(५) पृथ्वीराज—ये बीकानेर के राजवंश में से थे। इनका जन्म और देहान्त क्रमशः सं० १६०६ और सं० १६५७ में हुआ था। इनका रचा 'वेलि क्रिसनरुक्मणी री' डिंगल साहित्य में श्रृंगाररस का सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ माना जाता है। इसमें भाषा और भाव, कला और कल्पना का सुन्दर सम्मिलन हुआ है। श्रृंगाररस के अतिरिक्त इन्होंने वीर और शान्तरस की बड़ी उत्तम कविता की है। इनका शान्तरस का एक पद देखिये :—

हरि जेम हलाड़ो जिम हालीजै, काँय धणियाँ सूँ जोर कृपाळ।
मौळी दिवो दिवो छत्र माथै, देवो सो लेऊँ स दयाळ॥
रीस करो भावे रळियावत, गज भावै खर चाढ़ गुलाम।
माहरै सदा ताहरी माहव, रजा सजा सिर ऊपर राम॥
मूझ उमेद बड़ी महमैंहण, सिन्धुर पाखै केम सरै।
चीतारो खर सीस चित्र दै, किसूँ पूतळियाँ पाँण करै॥
तू स्वामी पृथुराज ताहरो, बळि वीजाँ को करै बिलाग।
रूड़ो जिको प्रताप रावळो, भूँडो जिको हमीणो भाग॥[1]

---

१ हलाड़ो = चलाओ। जेम = जिस तरह। धणियाँ = स्वामी। मौळी = जलाने की लकड़ी का भार। भावै = चाहे। रळियावत = प्यार करो। माहरै = मेरे। ताहरी = तेरी। माहव = माधव। रजा = आज्ञा। महमैंहण = परब्रह्म। सिंधुर पाखै केम सरै = हाथी के बिना कैसे काम चले? चीतारो = चित्रकार पूतळियाँ = काष्ठ-प्रतिमा। वीजाँ = दूसरा। बळि = फिर। बिलाग = वियोग। रूढ़ो = अच्छा। जिको = वह। भूंडो = ख़राब। हमीणो = मेरा।

(६) ईश्वरदास—इनका जन्म मारवाड़ राज्य के भाद्रेस नामक गाँव में सं० १५९५ के हुआ था[1]। ये जाति के चारण थे। इनके पिता का नाम सूजो और माता का अमरबाई था। ये बहुत उच्च श्रेणी के भक्त थे। अपने समय में ये देवता की तरह पूजे जाते थे और लोग 'ईसरा सो परमेसरा' कहकर इनका सम्मान करते थे। इनके ग्रंथों के नाम ये हैं—हरिरस, छोटा हरिरस, बाल लीला, गुण भगवंत हंस, गरुड़ पुराण, गुण आगम, निंदा-स्तुति, देवियाण, वैराट, रास कैलास; सभापर्व और हालाँ झालाँ रा कुंडळियाँ। इनका देहान्त सं० १६७३ में हुआ था।

ईश्वरदास ने शान्त और वीर दोनों रसों में कविता की है। इनकी भाषा बहुत सरल तथा स्पष्ट है और कविता में कहीं भी परिश्रम की झलक नहीं दिखाई पड़ती। उदाहरण देखिये :—

राम नाम मत बीसरै, आतम मूढ़ अयाण।
काळ सकळ जग काटबा, कस ऊभो केवाण॥
राम भणै भण राम भण, अवराँ राम भणाँय।
जिण मुख राम न ऊचरै, ता मुख लोह जड़ाय॥[2]

(७) दयालदास—ये मेवाड़-निवासी जाति के भाट थे। इन्होंने 'राणारासो', 'रासो को अंग' और 'अकल को अंग', तीन ग्रंथ बनाये जिनसे इनका रचना-काल सं० १६७५ के आस-पास अनुमानित किया जाता है। राणारासो में मेवाड़ का इतिहास वर्णित है। इसकी भाषा और रचना-प्रणाली से दयालदास का एक सहृदय कवि होना सूचित होता है। एक छप्पय देखिये :—

परसि पाइ पंकज कुँवारु आलिंगि तात प्रति।
हथु मथ पर फेरि तथ दिय सीखु राज गति॥
चल्यौ कुँवर चतुरंग सजि सेना समूह चढ़ि।
हय गयंद पयदल गरद आया सवा समढ़ि॥
परतळ अपार रथ सथ सजि गथ गुथि खचर दरक।
अवसान भाण कि क्यांन चुकि कहि दयाल दबिय अरक॥

---

१ पनरासो पिचाणवै, जनम्या ईसरदास।
चारण वरन चकार में, उण दिन हुवो उजास।

२ काटवा = काटने के लिये। कस ऊभो = कसकर खड़ा है। केवाण = तलवार।

(८) दुरसा जी—ये आढा गोत्र के चारण थे। इनका जन्म सं० १५९२ में और देहावसान सं० १७१२ में हुआ था। महाराणा प्रताप की प्रशंसा में लिखी हुई इनकी 'विरुद छहतरी' का एक-एक दोहा अपने रंग ढंग का अप्रतिम है। ये अकबर के कृपा-पात्र थे। अकबर के आश्रित होकर भी इन्होंने उसकी प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं लिखा, यह एक ऐसी बात है जो अन्यान्य चारण कवियों से इन्हें बहुत ऊँचा उठा देती है। इनकी कविता में अकबरकालीन हिन्दू समाज का बड़ा मार्मिक चित्रांकन हुआ है। इनके दो दोहे देखिये :—

अकबर गरब न आँण, हिन्दू सह चाकर हुआ।
दीठो कोई दीवाण, लटका करतो कटहड़े॥
अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हिंदू तुरक।
मेवाड़ो तिण माँह, पोयण फूल प्रतापसी॥

(९) जग्गाजी—ये खिड़िया शाखा के चारण थे। इन्होंने 'रतन महेसदासोत री वचनिका' नामक एक ग्रन्थ का निर्माण किया था। इसमें जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह के साथ औरंगजेब के विद्रोही पुत्रों के युद्ध का वर्णन है। इस लड़ाई में रतलाम के राजा रतनसिंह ने भारी वीरता का काम किया था। इसलिये उन्हीं के नाम से ग्रंथ का नामकरण हुआ। यह युद्ध सं० १७१५ में हुआ था। अतः यही समय इस ग्रंथ की रचना का भी समझना चाहिए। यह एक गद्य-पद्य मिश्रित ग्रंथ है। इसमें प्रसंगवश सभी रसों का वर्णन मिलता है। इनका एक दोहा यहाँ दिया जाता है।

जोड़ि भणै खिड़ियो जगो, रासो रतन रसाळ।
सूरा पूरा सांभळो, भड़ मोटा भूपाळ॥

(१०) मुहणोत नैणसी—ये जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) के दीवान थे। इनका रचना-काल सं० १७२० के लगभग है। इन्होंने डिंगल गद्य में एक इतिहास ग्रन्थ लिखा जो 'मुहणोत नैणसी री ख्यात' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें राजपूतों के ३६ वंशों का इतिहास बड़ी उत्तमता के साथ लिखा गया है। यह इतिहास का एक बहुत प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसकी भाषा का नमूना देखिये :—

"अलावदीन जालोर ऊपर आयो; सोनगरा सूँ लड़ाई हुई। कांधल खांड़ा रै मुंहड़ै हुतो सु लड़तां सात। चीस खांडा खूटा। कटारी पकड़ कर कांम

आयो। अर मां कह्यौ—बेटा कांधल ! जो इम जाणूं तो खांडा सूँ घर भराऊँ।"

(११) मान—इनके वंश, माता-पिता आदि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। इनकी जाति के संबंध में भी मत-भेद है। कुछ लोग इन्हें भाट और कुछ जैन यति बतलाते हैं। इन्होंने 'राज-विलास' नाम का एक ऐतिहासिक काव्य बनाया जिसकी समाप्ति सं० १७१७ में हुई थी। इसमें मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के वीरोचित कार्यों का वर्णन है। इसकी भाषा ब्रजभाषा-मिश्रित डिंगल है। 'राजविलास' नागरी प्रचारिणी सभा काशी की ओर से छप चुका है। ग्रन्थ वीररस प्रधान है पर शृंगार की छटा भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। इतिहास और काव्य दोनों ही दृष्टियों से यह ग्रन्थ बड़े महत्त्व का है। कविता देखिये :—

करि ताक सँभारि सँभारि सुहक्कत बेधत बान अभंग बली।
तनु त्रान संधान सुआन स प्रानहिं बेधत आनहि होत रली॥
सर सोक बजंत सुढंकिय अंबर डंबर जानि की मेघ श्रवै।
बहि रंग प्रवाह सराह प्रवालिय चोल रँगे जनु चेल चुवै॥

(१२) हरिदास—ये जाति के भाट थे। इन्होंने 'अजीतसिंह-चरित्र' नाम का एक ग्रन्थ सं० १७६३ के आस-पास बनाया था। इसमें जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) और उनके पुत्र अजीतसिंह का इतिहास वर्णित है। यह ग्रन्थ उक्त दोनों महाराजाओं का इतिहास जानने के लिए बड़ा उपयोगी है। इसमें एक विशेषता यह भी है कि घटनाओं के साथ साथ कवि ने उनके संवत भी दे दिये हैं जो अन्य कवियों के ग्रन्थों में कम देखे जाते हैं। एक उदाहरण लीजिये :—

सोलै सै छीहोतरै, महिनै आसू माह।
टीकायत बैठो तखत, सूर तणौं गजसाह॥
जहाँगीर दिल्ली हुँतां, पठयो गज सिरपाव।
नौबत घोड़ो नवसहस, रिधू कमंधाँ राव॥[1]

---

[1] आसू = आश्विन मास। टीकायत = पाटवी। सूर तणौं = सूरसिंह का। गाज साह = गजसिंह। हुँतां = से। रिधू = समृद्धि-शाली। कमंधाँ राव = राठोड़ों का राव।

(१३) वीरभाण—ये रत्नू शाखा के चारण जोधपुर के महाराजा अभयसिंह (सं० १७८१-१८०६) के आश्रित थे। इन्होंने 'राजरूपक' नामक एक ग्रन्थ बनाया जिसमें महाराजा अभयसिंह और अहमदाबाद के सूबेदार सरबलंद खाँ की लड़ाई का सविस्तर वर्णन है। वीरभांण की भाषा-शैली आलंकारिक और कविता बहुत सरस है। नमूना देखिये :—

चणै जान सोभा छभा देव वाली।
सुरनाथ चै; साथ वालै सिघाली॥
थया वृंद नाखत्र के चंद्र साथे।
कना सोभियो सिंभु जी खुसे माथे॥[1]

(१४) करणीदान—ये कविया शाखा के चारण मेवाड़ राज्य के शूलवाला गाँव के रहनेवाले थे। इन्होंने 'सूरजप्रकाश' नाम का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बनाया जिसमें ७५०० छंद हैं। इसमें सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा से लगा कर अभयसिंह तक के मारवाड़ के राजाओं का वर्णन है। महाराजा अभयसिंह को सुनाने के लिये करणीदान ने 'सूरज प्रकाश' का सारांश एक दूसरे छोटे ग्रन्थ के रूप में भी लिखा था जो 'विड़द सिंणगार' के नाम से प्रख्यात है। करणीदान की रचना बहुत ललित, प्रवाह युक्त एवं भावापन्न है और प्रसंगानुकूल उसमें सभी रसों की बड़ी भव्य व्यंजना हुई है। रौद्ररस की एक कविता देखिये :—

विस्वामित्रे स एण वात, कोपियो भयंकरा।
गिरा तरासरा गँभीर, धूजवे वसुंधरा॥
रोमंच अंग घोम रूप, ब्रह्म तेज मै वणे।
जटा छटा छटा जड़ागि, आगि नेत्र ऊफणे॥

उत्तर काल (सं० १८००—१९९७)

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के साथ साथ डिंगल साहित्य का उत्तरकाल भी प्रारंभ होता है। भाषा और विषय दोनों ही दृष्टियों से इस काल में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। बोलचाल की राजस्थानी और ब्रजभाषा डिंगल पर अपना प्रभाव जमाने लगीं और नर काव्यों का स्थान बहुत कुछ कृष्ण लीला, राम-महिमा तथा अन्य नैतिक और पौराणिक विषयों

---

१ जान=बरात। छभा=सभा। चै=के। सिंघाली=श्रेष्ठ। नाखत्र=नक्षत्र। थया=हुए। व्रंद=समूह। कना=अथवा। सिंभु=महादेव। खुसे=बैल, नन्दी।

ने ले लिया। इस काल की डिंगल और मध्यकालीन डिंगल में थोड़ा सा अंतर है। राजस्थानी और व्रजभाषा-मिश्रित इस डिंगल का नाम कुछ विद्वानों ने 'कृत्रिम डिंगल' रखा है, जो ठीक ही प्रतीत होता है। बाँकीदास आदि दो-एक इस काल के कवियों ने भी विशुद्ध डिंगल में कविता की है, पर ध्यानपूर्वक देखने से इनकी भाषा पर भी उक्त दो भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

(१) **गोपीनाथ**—ये बीकानेर के महाराजा गजसिंह के आश्रित थे। इन्होंने 'ग्रन्थराज' नामक एक ग्रन्थ बनाया जिसका दूसरा नाम 'गजसिंह-रूपक' भी है। इसमें महाराजा गजसिंह का चरित्र वर्णित है। इसका निर्माण काल सं० १८०० के आसपास ठहरता है। ग्रन्थ में गाहा, पाघड़ी, कवित्त, दूहा आदि छंदों का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। इस ग्रंथ के आधार पर गोपीनाथ डिंगल काव्य के उत्कृष्ट कवि कहे जा सकते हैं। इनकी भाषा का नमूना देखिये :—

जैतसी भंजि कंमरौ जड़ागि, धूधहर राइ लागे धियागि ॥
मालदे तणो भंजीयौ माण, कलियाण पांण झले केवाण ॥

(२) **हुक्मीचंद**—ये खिड़िया गोत्र के चारण जयपुर राज्य के भड़ेडिया गाँव के रहने वाले थे। इनका रचना-काल सं० १८२० के आसपास है। ये जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह के दरबारी कवि थे। हिन्दी में जिस तरह बिहारी के दोहे और गिरधर की कुंडलियाँ प्रसिद्ध हैं उसी तरह डिंगल में वीररसपूर्ण गीतों के कारण हुक्मीचंद का बड़ा नाम है। फुटकर छप्पय आदि भी इन्होंने बहुत अच्छे लिखे हैं। महाराजा प्रतापसिंह की प्रशंसा में लिखा हुआ इनका एक छप्पय यहाँ दिया जाता है :—

अंबापुर गिर उदै, क्रीत ऊजळ किरणालं।
तप प्रताप दन तेज, भाग झळहळ दुत भालं ॥
अधम अलुक होय अंध, मित्र चकवा प्रमोदत।
अवुध तिमर घट ओज, असह उड़गण आक्रंदत॥
जयसाह वीया जग जय जपत, वन कंज कविंद विकासिया।
सुभीयांण मुकट हिंदुवाण सिर, पातळ भाण प्रकासिया ॥[1]

---

१ अंबापुर = आमेर। क्रीत = कीर्ति। अलुक = उल्लू। पातळ = प्रतापसिंह।

(३) **मंछाराम**—ये जोधपुर के रहनेवाले जाति के सेवग थे। इन्होंने सं० १८६३ में 'रघुनाथ रूपक' नाम का डिंगल का एक रीति ग्रंथ बनाया था। इसमें डिंगल में प्रयुक्त गीतों तथा वयणसगाई आदि अलंकारों पर प्रकाश डाला गया है। उदाहरण में रामायण की कथा क्रम से वर्णित की गई है। इसकी भाषा शुद्ध डिंगल है और विषय प्रतिपादन-शैली भी बहुत सहज और रोचक है। डिंगल की काव्य रीति पर यह एक अनूठा ग्रंथ है और इस दृष्टि से मंछाराम का स्थान डिंगल साहित्य में बड़े महत्व का है। इनकी भाषा-कविता का उदाहरण देखिये :—

वयणसगाई वेस, मिल्याँ साँच दोसण मिटै।
किणयक समै कवेस, थपियो सगपण ऊधपै॥
खून कियाँ जाणे खलक, हाड़ बैर जो होय।
वयणसगाई बयण तो, कलपत रहै न कोय॥

(४) **महाराज मानसिंह**—ये मारवाड़ के राजा थे। इनका जन्म सं० १८३६ में हुआ था इनके पिता का नाम गुमानसिंह और पितामह का विजयसिंह था। बड़े काव्य प्रेमी और गुणग्राही थे और स्वयं भी बहुत अच्छी कविता करते थे। इन्होंने २५ के लगभग हिन्दी-संस्कृत के ग्रंथ बनाये। डिंगल में भी कविता करते थे। इनका एक दोहा देखिये :—

गिरपुर देस गमाड़, भमिया पग पग भाखराँ।
मह अँजसै मेवाड़, सह अँजसैं सीसोदिया॥[1]

(५) **बांकीदास**—ये आशिया शाखा के चारण थे। इनका जन्म सं० १८२८ में और देहान्त सं० १८९० में हुआ था। इन्होंने २७ के लगभग ग्रंथ बनाये जो नागरी-प्रचारिणी सभा काशी की ओर से प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी लिखी २७०० के लगभग ऐतिहासिक वातों[2] का पता भी हाल ही में लगा है। इनसे राजस्थान के इतिहास संबंधी बहुत सी नई बातों पर प्रकाश पड़ता है। बांकीदास स्पष्टभाषी पुरुष और सुधार-

---

१ अपने पर्वत, नगर और देश गँवाकर पैदल ही पर्वतों में घूमते रहे पर महाराणा (प्रताप) ने अपने धर्म की रक्षा की जिससे आज मेवाड़ देश गर्व करता है और सीसोदिया जाति को अभिमान है।

२ कहानी को राजस्थानी में वात कहते हैं।

वादी कवि थे। इनकी कविता के एक-एक शब्द से इनके ऊँचे व्यक्तित्व और इनके महान कवित्व-शक्ति का पता लगता है। इनका एक गीत यहाँ दिया जाता है।

बस राखो जीभ कहै इम वाँको, कड़वा बोल्याँ प्रभत किसी।
लोह तणी तरवार न लागै, जीभ तणी तरवार जिसी ॥१॥

भारी अगै उगैरा भारत, हेकण जीभ प्रताप हुवा।
मन मिलियोड़ा तिकाँ माढ़वाँ, जीभ करै खिण माँह जुवा ॥२॥

मैला मिनख बचनरै माथै, बात वणाय करै विस्तार।
बैठ सभा विच मूँडा बारै, वचन काढ़णो बहुत बिचार ॥३॥

मन में फेर घणीरी माला, पकड़े नँह जमदूत पलो।
मिलै नहीं बकणाँ सूँ माया, भाया कम बोलणो भलो[1] ॥४॥

(६) **किशन जी**—ये आढा गोत्र के चारण मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह (सं० १८३४-८८) के आश्रित थे। कवि होने के साथ साथ ये इतिहास के भी भारी ज्ञाता थे। इनके लिखे 'भीमविलास' तथा 'रघुवर-जस-प्रकाश' नामक दो ग्रंथ और सैकड़ों फुटकर कविताएँ मिली हैं। 'भीमविलास' में महाराणा भीमसिंह का जीवन-इतिहास वर्णित है और 'रघुवर-जस-प्रकाश' में डिंगल, हिन्दी और संस्कृत के मुख्य मुख्य छंदों का विवेचन है। इनकी भाषा बहुत प्रौढ़ एवं परिमार्जित है और इनकी रचना से इनके ऊँचे पांडित्य का परिचय मिलता है। इनकी कविता का नमूना देखिये :—

चाकर चोर कुचीत कुचल अस राव क्रमंत्तो।
वछ पान फल बिन्न दान बिणन्नपत अदत्तो ॥
पूत कपूत पिटाक ठोठ कविराज ठगारो।
खोटो दाम कुमंत्र नाद विण अमठ नगारो ॥

---

१ प्रभत = प्रशंसा। अगै = आगे; पूर्वकाल में। उगैरा = वगैरह। भारत = युद्ध। हेकण = एक। मिलियोड़ा = मिले हुए। तिकाँ = उनके। माढ़वां = मनुष्यों के। खिण = क्षण। जुवा = अलग। मैला = मलिन। मिनख = मनुष्य। माथै = ऊपर। मूंडा = मुख से। बारै = बाहर। धणी री = स्वामी की। पलो = वस्त्र का छोर। भाया = हे भाई। माया = धन।

क्रतघणी सचिव खोड़ो दरक सत्र नेह खग संधिये।
कदेई भूल सकना सुकव ऐता बार न बँधिये॥

(७) कृपाराम—ये जाति के चारण थे। इनका रचना-काल सं० १८६० के आस सास माना जाता है। अपने नौकर राजिया को संबोधित करके इन्होंने थोड़े से सोरठे बनाये जो राजस्थान में 'राजिया के सोरठे' के नाम से प्रचलित हैं। ये सोरठे राजस्थान में बहुत लोकप्रिय हैं और छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब सभी अपने पक्ष एवं प्रसंग का समर्थन करने के लिये इनका हवाला दिया करते हैं। अर्थ-चमत्कार और सरलता इन सोरठों के दो प्रधान गुण हैं। उदाहरण लीजिये :—

ऊँचे गिरवर आग, जलती सो देखै जगत।
पण जलती निज पाउ, रती न सूझे राजिया॥
मूसा नै मंजार, हित कर बैठा हेकठा।
सब जाणे संसार, रस नह रहसी राजिया॥[1]

(८) वीठू भोमो—ये जाति के चारण थे। इनका रचना-काल सं० १८८० के आस-पास है। बीकानेर के महाराजा रत्नसिंह और उनके पुत्र सरदारसिंह की प्रशंसा में इन्होंने छोटे-छोटे तीन चार ग्रंथ बनाये जो बीकानेर के राज पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इन्होंने दुहा और छप्पय का प्रयोग अधिक किया है। इनकी भाषा का नमूना देखिये :—

सधर रतन इल सोहियो, कमँधा पत बीकाण।
तै पाट प्रतपै रतन सा, भूपतियाँ वंस भाण॥

(९) बख़्तावर जी—ये जाति के राव (भाट) थे इनका जन्म सं० १८७० में मेवाड़ राज्यान्तर्गत बसी नामक गाँव में हुआ था। इन्होंने रसोत्पत्ति, संचार्णव आदि ग्यारह ग्रंथ लिखे जिनमें केहर प्रकास इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें कमलप्रसन्न नाम की एक वेश्या के प्रेम का वर्णन है। यह ग्रंथ सं० १९३६ में लिखा गया था। इसकी भाषा बहुत सरल और विषयानुकूल है। कविता भी बहुत सरस और भावपूर्ण है। उदाहरण :—

---

१ पाग = पगड़ी। पण = लेकिन। रती = रत्ती भर, तनिक भी। मूसा = चूहा। मंजार = बिल्ली। हित कर = प्रेम कर के। हेकठा = एक साथ। रस = प्रेम। नह = नहीं।

माया पायर माण ले, जिण री माया जाण।
नहँ माणें जिणरी नहीं, कहत पुराण कुराण॥
या माया गाड़ी गड़े, वाढ़ी वढ़े वजार।
अण-माँणी कर आसकी, लगे न किण रे लार॥[1]

(१०) सूर्य्यमल—ये बूंदी राज्य के दरबारी कवि थे। इनका जन्म सं० १८७२ में और स्वर्गवास सं० १९२० में हुआ था। डिंगल में वीररस के सर्वोत्कृष्ट कवि माने जाते हैं। इनके लिखे 'वंशभास्कर' का राजस्थान में बहुत आदर है। पर कविता की दृष्टि से इनकी 'वीर सतसई' 'वंशभास्कर' से भी अधिक सफल रचना है। सूर्य्यमल की कविता में वीर-वीरांगनाओं के हृदयस्थ भावों की बड़ी मार्मिक व्यंजना हुई है। कविता क्या की है कवि ने हृदय ही बाहर निकाल कर रख दिया है। इनके दो दोहे यहाँ दिये जाते हैं:—

पीहर पूँछे खोलणीं, पेई भूषण केर।
हेड़वियाँ वाभी हँसी, नणन्द कनै नालेर॥१॥
नराँ न ठीणो नारियाँ, ईखो संगत एह।
सूराँ घर सूरी महळ, कायर कायर गेह॥२॥[2]

(११) गणेशपुरी—इनका जन्म मारवाड़ राज्य के पँचभदरा परगने के चारवास गाँव में सं० १८८३ में हुआ था। राजस्थान के प्रथम श्रेणी के कवियों में इनकी गणना होती है। ये डिंगल और पिंगल दोनों में कविता करते थे। इनकी कविता बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एवं काव्य-कला कलित है पर उसमें प्रसादगुण की कमी है। इस काल के अन्यान्य कवियों की अपेक्षा इनकी भाषा पर पिंगल का प्रभाव कुछ अधिक दिखाई देता है:—

---

१ पायर=पाकर। माया=धन। अण-माँणी=बिना भोगे। आसकी=प्रीति। लार=साथ। माण ले=भोग ले। कुराण=कुरान।

२ पीहर पहुँचने पर खोली जानेवाली भूषणों की संदूक खोलने पर भावज हँसी कि ओहो! ननद के पास सती होने का नारियल भी मौजूद है॥ १॥ हे पुरुषो! स्त्रियों की निंदा मत करो। यह तो संगति देखना चाहिये। वीरों के घर में वीर महिला मिलेगी और कायर के घर में कायर॥ २॥

हरि-सुत-श्रौन हरिश्रौन हरि दैहैं कर,
घरी-घरी घोर धनु-घंट-घननाटे तें।
भेरि-रव-भूरि भट-भीर-भार भूमि भरि,
भूधर भरेंगे भिंदिपाल भननाटे तें॥
खप्पर-खनक ह्वै न खेटक के खप्पर ह्वाँ,
खेटकी खिसकि जैहैं खग्ग खननाटे तें।
चूकि जैहैं जान-धर जान को चलान वान;
वान-धर मेरे पान-बान सननाटे तें॥[1]

(१२) **मुरारिदान**—ये राजस्थान के प्रसिद्ध कवि सूर्यमल के दत्तक पुत्र थे। अपने पिता की तरह ये भी षड्भाषा में प्रवीण और काव्य कुशल व्यक्ति थे। वंशभास्कर का जो भाग अधूरा रह गया था उसे इन्होंने पूरा किया था। इसके सिवा इन्होंने दो ग्रन्थ और भी बनाये थे—डिंगल-कोश और वंश-समुच्चय। ये डिंगल के भारी विद्वान थे। इनका रचा 'डिंगल-कोष' एक बहुत उपयोगी ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ पद्य में है। भाले के पर्यायवाची शब्द देखिये :—

कूँत त्रिभागो सेल कह, नेजो अर नेजाल।
साबळ गांजो सांगड़ो, छड़वाळो छड़ियाळ॥
बरछो वांस दुधार बद, चव भालो चोधार।
प्रास छड़ाळ रु नेत पढ, दुवधारो दोधार॥

(१३) **ऊमरदान**—ये मारवाड़ राज्यान्तर्गत ढाढरवाड़ा गाँव में सं० १९०८ में पैदा हुए थे। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'ऊमर-काव्य' के नाम से छप चुका है। ये सुधारवादी कवि थे। इनकी भाषा बोलचाल की राजस्थानी है जिसमें साहित्यिकता कम और ग्रामीणता अधिक है। इन्होंने पेटू साधु-महात्माओं का खूब भंडा-फोड़ किया है। शिक्षित समुदाय की अपेक्षा राजस्थान के अपठित लोगों में इनकी कविता का प्रचार अधिक है। इनका एक दोहा देखिये :—

---

१ हरि......कर = अर्जुन के और घोड़ों के कानों को भगवान अपने हाथों से ढँकेंगे। भिंदिपाल = गोफन। खप्पर...ह्वाँ = खप्पर की खनखनाहट नहीं होगी; क्योंकि ढालों के खप्पर होंगे। खेटकी = ढालोंवाले। जानधर = सारथी। वानधर = अर्जुन। पान-वान = हाथ का का बाण।

कंथा तूं कांई करे, हाय तमाखू हेत।
टका एक री टाट में, दिन ऊगाँई देत ॥

(१४) बालाबख्श—ये पालावत गोत्र के चारण थे। इनका जन्म जयपुर राज्य के हणूंत्या नामक गाँव में सं० १६१२ में हुआ था। बहुत उच्चकोटि के कवि और साहित्य-प्रेमी सज्जन थे। इन्होंने नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी को १२०००) रु० का दान दिया जिसके व्याज से उक्त सभा की ओर से 'बालाबख्श-राजपूत-चारण पुस्तकमाला' की पुस्तकें छपती हैं। बालाबख्श जी ने १६ ग्रन्थ तथा बहुत सी फुटकर कविताएँ लिखीं जिनके प्रकाशन का आयोजन हो रहा है। इनका देहान्त सं० १६८८ में हुआ। नीचे इनकी एक कविता उद्धृत की जाती है। इसमें इनके गाँव का वर्णन है :

दिल्ली तें नैऋत उदीचिं जय पतन तें,
प्राची जोधपुर तें अवाची अग्रसर अग्र।
झुंझणूं तें जातवेद ईश घाँ रुमापुर तें,
सींकर तें उदित-कुकुभ सुख को समय ॥
मेधाविक भृग हेत विकसित पुंडरीक,
उर्वी कदंब मौलि-मंडित अनंत उग्र।
बाकीबानी बातजाता आलय अमल ऐसो,
चूड़ामणि बुद्धन को विदित हनूंत नग्र ॥[1]

(१५) महाराज चतुरसिंह—ये मेवाड़ के राजवंश में से थे। इनका जन्म सं० १६३३ में हुआ था। इनके पिता का नाम सूरतसिंह और दादा का अनूपसिंह था। बड़े सरल हृदय एवं साधु प्रकृति के पुरुष थे। ये हिन्दी संस्कृत आदि कई भाषाएँ जानते थे। इन्होंने सोलह ग्रन्थ बनाये जिनमें शान्तरस की प्रधानता है। इनकी कविता बहुत सरस, मौलिकतापूर्ण एवं प्रभावोत्पादक है। उदाहरण :—

---

१ इनका जीवनचरित्र पुस्तकाकार में छप चुका है। इसके लेखक जयपुर के प्रसिद्ध विद्वान श्री हरिनारायण जी पुरोहित बी० ए० हैं।

रहँट फरै चरख्यौ फरै, पण फरवा में फेर।
वो तो वाड़ हर्यौ करै, वो छूँतां रा ढेर ॥१॥
वाला वचे विरोध जी, करै फूँकर्या चाड़।
वासूं तो भाटो भलो, रूप ने मेटे राड़[1] ॥२॥

आधुनिक काल में राजस्थान के अधिकांश साहित्य का निर्माण हिन्दी भाषा में हो रहा है और डिंगल की जीवन-शक्ति नष्टप्राय सी हो गई है। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है; हिन्दी की उन्नति में ही हमारी और हमारे देश की उन्नति है। अतएव उसके प्रचार एवं प्रसार के लिये जितना भी उद्योग हम कर सकें, वह थोड़ा है। लेकिन दुख और आश्चर्य तो इस बात का है कि डिंगल के प्रति हिन्दी के विद्वानों का जितना आदर-भाव है उसका शतांश भी राजस्थान के साहित्य-सेवियों का उसके प्रति नहीं है। इससे अधिक लज्जा की बात और क्या हो सकती है? हर्ष का विषय है कि हाल ही में राजस्थान के कुछ नवयुवकों ने डिंगल भाषा और साहित्य को पुनर्जीवित करने का बीड़ा उठाया है। ईश्वर उन्हें इस सुकार्य में सफलता प्रदान करे, यही हमारी हार्दिक इच्छा है।

उदयपुर
ता० १०—८—१९४० } **मोतीलाल मेनारिया**

—:०:—

१ रहंट फिरता है और कोल्हू भी; लेकिन दोनों के फिरने के उद्देश्यों में अंतर है। एक तो पानी देकर गन्ने के खेत को हरा-भरा करता है और दूसरा गन्नों को पेलकर छोई का ढेर लगा देता है ॥१॥ उन लोगों से, जो दो प्रेमियों को उकसा कर उनमें मनमुटाव पैदा कर देता है तो वे पत्थर (मीनारें) अच्छे हैं जो दो सीमाओं के बीच में गड़ कर झगड़े का अंत कर देते हैं ॥२॥

महाकवि चंदबरदाई

चंदबरदाई डिंगल काव्य के अमर जीवों में से एक हैं। ये जाति के भाट थे। इनके पिता का नाम वेण और गुरु का गुरुप्रसाद था। अजमेर के चौहानों के यहाँ इनके पूर्वजों की यजमानी थी। इनका जन्म पंजाब प्रान्त के प्रसिद्ध नगर लाहौर में हुआ था।

चंद का जन्म किस संवत् में हुआ, इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। कहा जाता है कि चंद और उनके आश्रयदाता महाराजा पृथ्वीराज दोनों एक ही दिन पैदा हुए थे। इतिहासकारों ने पृथ्वीराज का जन्म वि० सं० १२०५ निश्चित किया है। अतएव यही समय चंद के जन्म का भी समझना चाहिए।

चौहान वंश से परंपरागत संबंध होने से बाल्यावस्था में चंद की पृथ्वीराज से घनिष्टता हो गई थी और बड़े होने पर ये उनके राज कवि, सामंत और प्रधान मंत्री बन गये थे। पृथ्वीराज की तरह चंद भी बड़े वीर एवं समरपटु थे और अश्वारोहण में, शब्दवेधी बाण मारने में तथा असि-संचालन में बड़े सिद्धहस्त माने जाते थे। अतएव युद्ध के समय ओजस्विनी कविताओं द्वारा अपने आश्रयदाता तथा उनके सैनिकों को उत्साहित करने के अतिरिक्त युद्ध-क्षेत्र में भी अपनी रण-दक्षता का परिचय इन्हें पूर्ण रूप से और प्रायः देना पड़ता था। अर्थात् ये कवि थे और योद्धा भी।

चंद ने दो विवाह किये थे। इनकी पहली स्त्री का नाम कमला उपनाम मेवा और दूसरी का गौरी उपनाम राजोरा था। रासो की कथा चंद ने गौरी से कही है। गौरी प्रश्न करती है, चंद उसका उत्तर देते हैं। वह शंका करती है, चंद उसका समाधान करते हैं। इन दो स्त्रियों से चंद के ग्यारह संतति हुई, दस पुत्र और एक कन्या। कन्या का नाम राजबाई था। पुत्रों में चंद का चौथा पुत्र जल्हण सब से योग्य, प्रतिभाशाली और गुणाढ्य था। चंद की मृत्यु के बाद इसी ने रासो को पूरा किया था।

प्रसिद्ध है कि निम्नलिखित दोहे के बाद रासो में जो वर्णन पाया जाता है वह जल्हण ही का लिखा हुआ है :—

आदि अंत लगि वृत्ति मन, ब्रन्नि गुनी गुनराज।
पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चले गज्जन नृप काज॥

वीर एवं साहसी होने के अतिरिक्त चंद षड्भाषा, व्याकरण, साहित्य, छंद-शास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, संगीत आदि कई विद्याओं में पारंगत थे और कवि तो माँ के पेट से ही पैदा हुए थे। इन गुणों के कारण चंद जहाँ जाते वहाँ उन पर सम्मान की वर्षा होती थी। ये राज दरबार के भूषण, वीरों के अग्रणी और कवियों के सिरताज थे।

चंद की मरण तिथि अनिश्चित है। रासो में लिखा है कि चंद और पृथ्वीराज का देहावसान एक ही दिन सं० ११५८ (वि० सं० १२४६) में साथ साथ ग़ज़नी में हुआ था। परन्तु आधुनिक इतिहासवेत्ता रासोकार के उक्त कथन को सर्वांशतः सत्य नहीं मानते। पृथ्वीराज का मरण काल वि० सं० १२४६ (सन् ११६२ ई०) तो ये भी स्वीकार करते हैं पर साथ ही साथ उनका यह भी कहना है कि पृथ्वीराज ने भारत में मुसलमानों के साथ युद्ध करते हुए रणभूमि में प्राण छोड़े थे, ग़ज़नी में नहीं।[1] इसके सिवा, जैसा कि रासो में लिखा मिलता है, पृथ्वीराज के ग़ज़नी में क़ैद रहने और शाहबुद्दीन को एक तीर द्वारा धराशायी करने के पश्चात् चंद सहित आत्मघात करने की कथा को भी वे अनैतिहासिक और कवि कल्पना बतलाते हैं।[2] इन विभिन्न मतों के कारण तथा विश्वसनीय ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में इस संबंध में दृढ़ता के साथ कुछ कहना बहुत कठिन है। फिर भी यदि इतिहास-लेखकों का यह मत, कि पृथ्वीराज का देहान्त वि० सं० १२४६ में हुआ था, ठीक है और रासो के 'इक्क दीह ऊपन्न इक्क दीहैं समाय क्रम' आदि शब्दों का यही अर्थ है कि पृथ्वीराज और चंद दोनों एक दिन पैदा हुए और एक दिन मरे तब तो स्पष्ट ही है कि चन्द की मृत्यु भी वि० सं० १२४६ ही में हुई।

चंद ने पृथ्वीराज रासो नाम का एक बहुत बड़ा ग्रंथ बनाया जिसमें वीर केसरी महाराज पृथ्वीराज चौहान का जीवन-चरित वर्णित है और डिंगल साहित्य का अमूल्य रत्न, काव्य कला का उत्कृष्ट नमूना और

---

१ वी० ए० स्मिथ; आक्सफर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० २२०
२ ओझा; कोपोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ६०

हिन्दी भाषा भाषियों के गौरव की वस्तु माना जाता है। इसकी कई एक हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें से किसी में श्लोक (अनुष्टुप छंद) संख्या ३५००, किसी में ११५०० और किसी में १००००० के लगभग है। चंद ने रासो में कवित्त (छप्पय), दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा, साटक, वथुआ, भुजंग प्रयात, पद्धरी, भुजंगी, रसावला, मुरिल्ल, अरिल्ल, मलया, हनूफाल, विराज आदि कई प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। इनमें से कवित्त और दूहा की संख्या अधिक और दूसरों की अपेक्षाकृत कम है। उपरोक्त छंदों में वथुआ आदि दो-एक छंद ऐसे भी हैं जिनका उल्लेख हिन्दी तथा संस्कृत के पिंगल शास्त्र के ग्रंथों में नहीं मिलता। चंद की कविता में छंदोभंग बहुत दृष्टिगोचर होता है पर इसे लिपिकारों की कृपा समझनी चाहिए।

चंद की भाषा विशेषतया डिंगल है, पर वह विशुद्ध डिंगल नहीं है। उसमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि कई भाषाओं का मिश्रण हुआ है। और अरबी, फ़ारसी, तथा तुर्की के शब्द भी बहुलता से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं तो भाषा अपने प्राचीन रूप में विद्यमान है और कहीं कहीं बदलते बदलते इतनी अर्वाचीन हो गई है कि उसे देख कर कभी कभी तो मन में यह शंका उठने लगती है कि क्या रासो वास्तव में उतना पुराना ग्रंथ है जितना कि हम उसे मान बैठे हैं! रासो की भाषा में कारकों की संयोगात्मक और वियोगात्मक दोनों अवस्थाएँ मिलती हैं। संज्ञाओं के साथ जिन विश्लिष्ट विभक्तियों का प्रयोग हुआ है, वे इस प्रकार हैं :—

करण—सम, सों, तें, ते, त।
संप्रदान—सम, सों, प्रति।
अपादान—पास, कहँ, कों।
संबंध—कृत, को, के, की, कैं, केरी, केरौ।
अधिकरण—मद्धि, मधि, मझि, माहिं, माहि, महिं, महि, में, मे, पर, मं।

चंद एक महान कवि थे। इनकी कविता बहुत सबल, भाषा बहुत प्रौढ़ एवं रचना-पद्धति बहुत स्वाभाविक है। रासो में वीर रस प्रधान तथा अन्य रस गौण हैं और एक उच्च कोटि के महाकाव्य के सभी गुण पूर्ण रूप से उसमें पाये जाते हैं। चंद की कल्पनाशक्ति अपूर्व थी। अतएव जिस विषय को उन्होंने पकड़ा उसका ऐसा विस्तृत, भव्य और सजीव

त्रियौ बान संधान हन्यौ सोमेसर नंदन।
गाढौ करि निग्रह्यौ षनिव गड्यौ संभरि धन॥
थल छोरि न जाइ अभागरौ गाड्यौ गुन गहि आगरौ।
इम जंपै चंदवरद्दिया कहा निघट्टै इय प्रलौ॥

आगे हम नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासोवाले संस्करण में से बीसवाँ समय (पद्मावती विवाह कथा) और उन्तीसवाँ समय (घग्घर नदी का युद्ध) उद्धृत करते हैं। उक्त संस्करण बहुत अशुद्ध छपा है और इसलिये जहाँ कहीं हमें अशुद्धियाँ दीख पड़ीं वहाँ हमने उदयपुर के 'विक्टोरिया हाल पुस्तकालय' वाली हस्तलिखित प्रति के अनुसार संशोधन कर लिया है।

(१)

(पद्मावती विवाह कथा)

दूहा

पूरब दिस गढ़ गढ़न पति, समुदसिखर अति द्रुग्ग।
तहँ सु विजय सुर राजपति, जादू कुलह अभग्ग॥१॥
हसम हयग्गय देस अति, पति सायर म्रज्जाद।
प्रबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसाँन बहु साद॥२॥

कवित्त

धुनि निसाँन बहु साद, नाद सुरपंच बजत दिन।
दस हजार हय चढत, हेम नग जटित साज तिन॥
गज असंख गज पतिय, मुहर सेना तिय संखह।
इक नायक कर धरी, पिनाक धर भर रज रक्खह॥
दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरंग उम्मर डमर।
भंडार लछिय अगनित पदम, सो पदम सेन कूँवर सुघर॥३॥

१—समुदसिखर = समुद्रशिखर गढ। विजय = विजयपाल। जादू कुलह = यदुवंशी। अभग्ग = अखंड।
२—सायर = सागर। म्रज्जाद = सीमा। हयग्गय = हाथी और घोड़े। निसाँन = नगाड़े। साद = आवाज। हसम = (अ० हशम) वैभव।
३—मुहर सेना तिय संखह = एक शंख पैदल सेना उसके आगे

दूहा

पदम सेन कूंवर सुघर, ता घर नारि सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुँ कला ससिभान ॥४॥

कवित्त

मनहुँ कला ससिभान, कला सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय॥
बिगसि कमल स्रिग भ्रमर, बेन खंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब, मोति नखसिख अहिघुट्टिय॥
छप्पति गयंद हरि हंस गति, बिह बनाय संचै सचिय।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहु काम कामिनि रचिय॥५॥

दूहा

मनहु काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास।
पशु पंछी सब मोहिनी, सुर नर मुनियर पास॥६॥
सामुद्रिक लच्छन सकल, चौसठि कला सुजान।
जानि चतुर दस अंगषट, रति बसंत परमान॥७॥
सखियन संग खेलत फिरत, महलनि बाग निवास।
कीर इक्क दिष्षय नयन, तब मन भयौ हुलास॥८॥

चलती थी। इक......रक्खह=एक धनुर्धारी सेना नायक के अधिकार में यह सेना रहा करती थी। सम=से। रथ सुरंग उम्मर डमर=संध्या समय के रंग बिरंगे बादलों के समान उसके रथ विचित्र थे।

४—कुँवर=कुँवरी। ससिभान=(सं० शशभानु) चंद्रमा।

५—बेस=उम्र। अम्रित रस पिन्निय=उसी के पास से मानो अमृत रस पिया हो। स्रिग=माला। अहिघुट्टिय=अभिघटित किया, बनाया। बिह=विधाता।

७—चौसठि कला सुजान=गीत, वाद्य, नृत्य आदि चौसठ कलाओं में निपुण। अंगषट=सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त।

८—बिगसि जनु कोक किरन रवि=सूर्य की किरण देख कर मानो चकवा प्रसन्न हुआ हो। चक्कित=चकित, विभ्रान्त। उद जु

कवित्त

मन अति भयौ हुलास, विगसि जनु कोक किरन रवि।
अरुन अधर तिय सधर, बिम्ब फल जानि कीर छवि॥
यह चाहत चख चकित, उह जु तक्किय झरप्पि झर।
चंच चहुट्टिय लोभ, लियौ तब गहित अप्प कर॥
हरषत अनन्द मन महि हुलस, लै जु महल भीतर गई।
पंजर अनूप नग मनि जटित, सो तिहि मँह रष्षत भई॥६॥

दूहा

तिही महल रष्षत भइय, गई खेल सब भुल्ल।
चित्त चहुँट्टयो कीर सो, राँम पढावत फुल्ल॥१०॥
कीर कुंवरि तन निरखि दिखि, नखसिख लौं यह रूप।
करता करी बनाय कै, यह पदमिनी सरूप॥११॥

कवित्त

कुट्टिल केस सुदेश, पौहप रचियत पिक्क सद।
कमल गंध वय संध, हंस गति चलह मंद मद॥
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नख स्वाति बुंद जस।
भमर भँवहि भुल्लहि सुभाव, मकरंद वास रस॥
नैन निरखि सुख पाय सुक, यह सदिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज प्रथिराज जिय॥१२॥

तक्किय झरप्पि झर = वह ताक कर जल्दी से उस पर झपटा। चंच चहुट्टिय लोभ = लोभ के वश में होकर उसने चोंच चलाई। गहित = पकड़ लिया। पंजर = पिंजड़ा।

—चहुँट्टयो = लग गया। राम पढ़ावत फुल्ल = बड़ी प्रसन्नता के साथ उसे राम नाम पढ़ाने लगी।

—कुट्टिल केस सुदेस, पौहप रचियत = उसके सुन्दर घुंघराले वालों में फूल गुथे हुए थे। पिक्कसद = कोकिल के समान मधुर शब्द बोलती थी। स्वातिबुंद = मोती। स्वाति बुंद जस = उसके नख मोती के समान आवदार थे। वय सन्ध = वयः सन्धि, कौमार से यौवनावस्था में परिवर्तन होने की अवस्था।

दूहा

सुक समीप मन कुँवरि को, लग्यो वचन के हेत।
अति विचित्र पंडित सुआ, कथत जु कथा अमेत ॥१३॥

गाथा

पुच्छत वयन सुबाले, उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये।
कवन नाम तुम देस, कवन यंद करै परवेश ॥१४॥
उच्चरिय कीर सुनि वयनं, हिन्दवान दिल्ली गढ़ अयनं।
तहाँ इन्द्र अवतार चहुवांन, तहँ प्रथिराजह सूर सुभारं ॥१५॥

पद्धरी

पदमावतीहि कुँवरी सँघत्त, दुज कथा कहत सुनि सुनि सुवत्त ॥१६॥
हिन्दवांन थान उत्तम सुदेस, तहँ उदत द्रुग्ग दिल्ली सुदेस ॥१७॥
संभरि नरेस चहुवांन थांन, प्रथिराज तहाँ राजंत भांन ॥१८॥
वैसह बरीस षोड़स नरिंद, आजान बाहु भुअ लोक यंद ॥१९॥
संभरि नरेश सोमेसपूत, देवंत रूप अवतार धूत ॥२०॥
सामंत सूर सब्बै अपार, भूजाँन भीम जिम सार भार ॥२१॥
जिहि पकरि साह साहाब लीन, तिहुँ बेर करिय पानीप हीन ॥२२॥

१३—अमेत = अमित, बहुत।

१४—यंद = इन्द (इन्द्र), राजा। कवन यंद करै परवेश = कौन सा राजा राज्य करता है। सूर सुभारं = भारी वीर।

१६—सङ्घत्त = साथ, समक्ष। दुज = (स० द्विज) पक्षी।

१८—थांन = वंश।

१९—बैसह (सं० वयस) उम्र। वरीस = वर्ष। यंद = (सं० इन्दु) चन्द्रमा।

२०—धूत—(सं० धृत) धारण किया।

२१—भूजाँन भीम जिम सार भार = उसकी विशाल भुजाओं में भीम की भुजाओं के समान भारी बल है।

२२—साह सहाब = शाह शाहबुद्दीन । पानीप हीन = तेज हीन, कान्तिहीन।

सिंगिनि सुसद्द गुन चढ़ि जँजीर, चुक्कै न, सबद बेधंत तीर ॥२३॥
बल्ल बैन करन जिम दाँन मान, सत सहस सील हरिचँद समान ॥२४॥
साहस सुक्रंम विक्रम जुवीर, दाँनव सुमत्त अवतार धीर ॥२५॥
दिस च्यार जांनि सब कला भूप, कंद्रप्प जांनि अवतार रूप ॥२६॥

दूहा

कामदेव अवतार हुअ, सुअ सोमेसर नंद।
सहस किरन झलहल कमल, रिति समीप वर विंद ॥२७॥
सुनत श्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल विधि अंग।
तन मन चित चहूँवाँन पर, वस्यौ सुरत्तह रंग ॥२८॥
बेस विती ससिता सकल, आगम कियौ वसंत।
मात पिता चिन्ता भई, सोंधि जुगति कौ कंत ॥२९॥

कवित्त

सोधि जुगति कौ कंत, कियौ तब चित्त चहौं दिस।
लग्यौ विप्र गुर बोल, कही समझाय वात तस ॥
नर नरिंद नरपति, बड़े गढ़ द्रुग्ग असेसह।
सीलवन्त कुल सुद्ध, देहु कन्या सुनरेसह ॥

२३—सिंगिनि सुसद्द गुन चढ़ि जँजीर = उसके धनुष पर लोह शृंखला की प्रत्यंचा चढ़ती है।

२४—बल्ल बैन...हरिचंद समान = जो दान-सम्मान करने में बलि, वेणु और कर्ण के बराबर है और शील में एक लाख हरिश्चन्द्र के समान है।

२६—कंद्रप्प = (सं० कन्दर्प) कामदेव।

२७—सुअ = (सं० सुत) पुत्र, बेटा। सहसकिरन = सूर्य। रिति समीप वर विंद = रति के समीप मानो कामदेव शोभा देता है।

२८—सुरत्तह = प्रेम।

२९—ससिता = (सं० शिशुता) किशोरावस्था। आगम कियौ वसंत = युवावस्था प्रारम्भ हुई।

तत्र चलन देहु दुज्जह लगन, सगुन बंद दिय अप्प तन।
आनंद उछाह समुदह क्षिप्र, बजत नद्द नीसाँद धन ॥३०॥

दूहा

सवालष्ष उत्तर सयल, कमऊँ गढ़ दूरंग।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्रिब्ब अभंग ॥३१॥

नारकेलि फल परिठ दुज, चौक पूरी मनि मुत्ति।
दई जु कन्या बचन वर, अति आनन्द करि जुत्ति ॥३२॥

भुजंग प्रयात

बिहसिं वरं लगन लिन्नौ नरिंदं, बजी द्वार द्वारं सु आनन्द दुंदं ॥३३॥
गढंनं गढं पत्ति सव्व वोलि नुंत्ते, आइयं भूप सव्व कटुंब सुत्ते ॥३४॥
चले दस सहस्सं असव्वार जानं, परं पूरीय पैदलं तेजु थानं ॥३५॥
मत्त मद गलितं सै पंच दंती, मनों साँम पाहार बुग पंति पंती ॥३६॥
चले अग्गि तेजी जु तत्ते तुखारं, चौवरं चौरासी जु साकत्ति भारं ॥३७॥
कंठ नगं नूपं अनोपं सु लालं, रंगं पंच रंगं ढलक्कंत ढालं ॥३८॥

३०—तस = उसे। असेसह = तमाम। नद्द = (सं० नाव) शब्द धन = बहुत।

३१—सयल = समस्त, समग्र, सब। दूरंग = दुर्ग, क़िला। द्रिब्ब = सम्पत्ति। अभंग = अटूट।

३२—नारिकेलि = नारियल। परठि = देखकर। मुत्ति = मोती। जुति = युक्ति।

३३—दुंदं (सं० दुन्दुभि) नगाड़ा।

३४—सुत्ते = सहित।

३५—जानं = बरात।

३६—मत्त मद गलितं सै पंच दंती = पाँच सौ मदोन्मत्त हाथी। पाहार = (प्रा० पयोहर) बादल। हाथियों के दाँत ऐसे थे मानो काले बादलों में बगुलों की पंक्ति हो।

३७—तत्ते तुखारं = तेज घोड़े। चौवरं = चँवर। चौरासी = चारों तरफ़। साकत्ति भारं = भारी शक्ति वाले।

पंच सुरं सावद्द बाजित्र बाजं, सहस सहनाय म्रंग मोहि राजं ॥३९॥
समुंद सिर सिखर उच्छाह छाहं, रचित मंडपं तोरनं श्रीयगाहं ॥४०॥
पदमावती विलखि वर बाल वेली, कही कीर सो बात तत्र हो अकेली ॥४१॥
झटं जाहुं तुम्ह कीर दिल्ली सुतेसं, वरं चहुवांन जु आनौ नरेसं ॥४२॥

दूहा

आँनो तुम्ह चहुवांन वर अरु कहि इहै सँदेस।
सांस सरीरहि जो रहे प्रिय प्रथिराज नरेस ॥४३॥

कवित्त

प्रिय प्रथिराज नरेस, जोग लिखि कग्गर दिन्नौ।
लगुन वरग रचि सरब, दिन द्वादस ससि लिन्नौ ॥
सें अरु ग्यारह तीस, साष संवत परमानह।
जोषित्री कुल सुद्ध, बरनि वरि रष्षहु प्रानह ॥
दिष्षंत दिष्ट उच्चरिय, वर इक पलक विलम्ब न करिय।
अलगार रयन दिन पंच महि, ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय ॥४४॥

दूहा

ज्यों रुकमनि कन्हर वरी, ज्यों वरि संभरि कांत।
शिव मँडप पच्छिम दिसा, पूजि समय सं प्रांत ॥४५॥
लै पत्री सुक यों चल्यौ, उड्यौ गंगनि गहि वाव।
जहँ दिल्ली प्रथिराज नर, अद्ध जाँम में जाव ॥४६॥
दिय कग्गर नृप राज कर, षुलि वंचिय प्रथिराज।
सुक देखत मन में हँसे, कियो चलन को साज ॥४७॥

४०—रचित मंडपं तोरनं श्रीयगाहं=बड़े सुन्दर तोरण और मंडप बनाये गये।

४४—कग्गर=कागज। बरग=वर्ग। दिन द्वादस ससि=सुक्ल पक्ष की द्वादशी का दिन। से अरु ग्यारहतीस=११३०। परमानह=निश्चय ही। क्षत्रियकुल। दिष्पंत दिष्ट=आँखों से देखते ही। उच्चरिय=चल दीजिए, रवाना हो जाइये। अलगार=अलग ही अलग, दूसरी ओर से। रयन=रात्रि।

४५—से प्रांत=प्रातः काल में।

कवित्त

उहै घरी उहि पलनि, उहै दिन बेर उहैं सजि।
सकल सूर सामंत, लिये सब बोलि बंब बजि॥
अरु कविचंद अनूप, रूप बरस बर कह बहु।
और सेन सब पच्छ, सहस सेना तिय सब्बहु॥
चामंडराय दिल्ली धरह, गढ़ पति करि गढ़ भार दिय।
अलगार राज प्रथिराज तब, पूरब दिस तब गमन किय॥४८॥

दूहा

जादिन सिषर बरात गय, ता दिन गय प्रथिराज।
ताही दिन पतिसाह कौं, भइ गज्जनै अवाज॥४९॥

कवित्त

सुनि गज्जनै अवाज, चढ्यौ साहाबदीन बर।
खुरासाँन सुलतान, कास काबिलिय मीर धर॥
जङ्ग जुरन जालिम जुझार, भुज सार भार भुअ।
धर धमंकि भजि सेस, गगन रवि लुप्पि रेन हुअ॥
उलटि प्रवाह मनौ सिंधु सर, रुक्कि राह अड्डौ रहिय।
तिहि घरिया राज प्रथिराज सौं, चंद वचंन इहि विधि कहिय॥५०॥

कवित्त

निकट नगर जब जांनि, जाय बर बिंद उभय भय।
समुद सिखर घन नद्द, इंद दुहुँ ओर घोर गय॥
अगिवानिय अगिवान, कुँअर बनि बनि हय सज्जति।
दिष्षन को त्रिय सबनि, चढ़ि गौरव छाजन रज्जति॥
विलखि अवास कुँवरी वदन, मनो राह छाया सुरत।
झंषति गवष्षि पल पल पलक्कि, दिखत पंथ दिल्ली सुपति॥५१॥

पद्धरी

दिष्षंत पंथ दिल्ली दिसाँन, सुख भयों सूक जब मिल्यो आन॥५२॥

४९—भइ गज्जनै अवाज = ग़जनी में ख़बर मिली।
५१—मनो राह छाया सुरत = मानो उसकी शोभा पर राहू की छाया पड़ गई हो। झंखति = झाँकती थी।
५२—सूक = तोता।

उट्ठि राज प्रथिराज, बाग लग मनौं वीर नट।
कढ़त तेग मनौं बेग, लगत मनौं बीज झट्ट घट॥
थकि रहे सूर कौतिग गिगन, रगन मगन भइ श्रोन घर।
ह्रदि हरषि वीर जग्गे हुलस, हुरेउ रंगि नव रत्त वर॥८३॥

दूहा

हुरेउ रंग नव रंत कर, भयौ जुद्ध अति चित्त।
निस वासुर समुझि न परत, न को हार नह जित्त॥८४॥

कवित्त

न को हार नह जित्त, रहेइ न रहहि सूरवर।
धर उप्पर भरि परत, करत अति जुद्ध महाभर॥
कहौं कमध कहौं मथ, कहौं कर चरन अंतरुरि।
कहौं कंध वहि तेग, कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर॥
कहौं दंत मंत हय खुर खुपरि, कुंभभ्रसुंडह रुंड सब।
हिंदवान रान भय भांन मुख, गहिय तेग चहुवांन जब॥८५॥

भुजंग प्रयात

गही तेग चहुँवाँन हिँदवाँन रानं, गजं जूथ परि कोप केहरि समानं॥८६॥
करे रुंड मुंडं करी कुंभ फारे, बरं सूर सामंत हुकि गर्ज भारे॥८७॥
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे, मदं तंजियं लाज ऊमंग मग्गे॥८८॥
दौरि गज अंध चहुवाँन केरो, घेरीयं गिरद्दं चिहौ चक्क फेरो॥८९॥
गिरद्दं उड़ी भाँन अंधार रैनं, गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि नैनं॥९०॥
सिर नाय कम्मांन प्रथिराज राजं, पकरियै साहि जिम कुलिंग बाजं॥९१॥
लै चल्यौ सिताबी करी फारि फौजं, परं मीर सै पंच तहँ खेत चौजं॥९२॥
रजंपुत्त पच्चास झुज्झे अमोरं, बजै जीत के नद्द नीसान घोरं॥९३॥

८३—कौतिग = कौतुक। ह्रदि = ह्रदय में। हुरेउ = स्फुरित हुआ। रत्त = रक्त।

८५—कमध = कबंध, धड़। अंतरुरि = अँतड़ियाँ।

८८—कलप = (सं० कलाप) समूह। मदं तंजियं लाज ऊमंग मग्गे = मद, लाज उमंग को छोड़ कर (हाथी) भग रहे हैं।

९१-९३—कुलिंग = एक पक्षी; मुर्गी। सिताबी = शीघ्र। सै पंच = पाँच सौ। चौजं = चारों तरफ़। अमोरं = न मुड़ने वाले; अडिग।

दूहा

जीति भई प्रथिराज की, पकरि साह लै संग ।
दिल्ली दिसि मारगि लगौ, उतरि घाट गिर गंग ॥६४॥
वर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरताँन ।
निकट नगर दिल्ली गये, प्रथीराज चहुँआँन ॥६५॥

कवित्त

बोलि विप्र सोधे लगन्न, सुभ घरी परिट्ठय ।
हर बांसह मंडप बनाय, करि भांवरि गंठिय ॥
ब्रह्म वेद उचरहिं, होम चौरी जु प्रत्ति वर ।
पद्मावती दुलहिन अनूप, दुल्लह प्रथिराज राज नर ॥
डंड्यौ साह साहावदी, अट्ठ सहस हय वर सुवर ।
दै दाँन माँन षटभेष को, चढ़े राज द्रुग्गा हुजर ॥६

कवित्त

चढ़िय राज प्रथिराज, छाँड़ि साहाबदीन सुर ।
निपत सूर सामंत, बजत निसान गंजत धुर ॥
चंद्र बदनि मृग नयनि, कलस ले सिर सनमुख जुख ।
कनक थार अति बनाय, मोतिन बंधाय सुख ॥
मंडल मयंक वर नार सव, आनंद कंठह गाइयव ।
ढोरंत चँवर किंक्कर करहिं, मुकट सीस तिक जु दियव

दूहा

चढ़े राज द्रुग्गह नृपति, सुमत राज प्रथिराज ।
अति आनन्द आनन्द सैं, हिंदवांन सिरताज ॥६८॥

९६—परिट्ठय = परीक्षा कर के; देख कर के । हर बांसह = हरे बाँस का । चौरी = विवाह मंडप । षटभेष = राजस्थान में यति, जोगी, सन्यासी, जंगम, चारण और ब्राह्मण षटभेस कहलाते हैं । षटभेष = षट्दर्शन, षट्वर्ण । डंड्यौ = दंड दिया; जुर्माना किया ।

(२)

(घग्घर नदी का युद्ध)

कवित्त

दिल्लियपति प्रथिराज, अवनि आषेटक षिल्लिय।
साठ सहस असवार, जाइ लग्गा धर ढिल्लिय॥
धूनि धरा पतिसाह, रहे पेसोर सुथानय।
सथ्थ लिये सामंत, दिली कैमास सु जानय॥
म्रगया सु रमय प्रथिराज वर, गज्जन वै धर धूसियै।
दूसरौ इंद्र दिल्लेस वर, सुभर सरस ढिग सुभ्भियै॥१॥

दूहा

गई षब्बर अम्मान की, उट्ठ चढ़े असवार।
दिल्ली धर लिजै तषत, दिसि गज्जनै पुकार॥२॥
प्रथीराज साजत पवँग, है गै नर भर भार।
दिल्ली पति आखेट चढ़ि, कुहुकबान हथनारि॥३॥
डेरा करि पेसोर नृप, सहस सट्ठि सुभ बाज।
सोन पंथ विच्च पंथ दोइ, गल अज्जै अग्राज॥४॥

१—षिल्लिय = खेल रहा है। ढिल्लिय = दिल्ली। जाइ लग्गा धर ढिल्लिय = दिल्ली से साथ ले गया है। धूनि धरा पतिसाह = पृथ्वीपति धूनि साह अथवा पृथ्वीराज। पेसोर = गाँव विशेष (यह गाँव रोहतक जिले में है)। सुथानय = सुस्थान; सुन्दर स्थान। कैमास = पृथ्वीराज के मंत्री का नाम।

२—अम्मान = धर्मायन नामक व्यक्ति।

३—पवँग = घोड़े, नौका। है = हय, घोड़ा। गै = गय, हाथी। नर—पैदल सेना। भर भार = पूरा सामान; सब प्रकार का सामान। कुहुकबान = एक तरह का वाण जो बाँस की कई पट्टियाँ जोड़ कर बताया जाता है, जिसके चलते समय कुछ शब्द निकलता है। अतएव 'कुहक' शब्द करने वाला वाण विशेष। हथनारि = एक प्रकार की प्राचीन तोप जो हाथियों पर चलती थी।

४—सहस सट्ठि सुभ बाज = साठ हज़ार अच्छे घोड़े। सोन पंथ = सोनपत, स्थान विशेष। पंथ दोइ = दो रास्ते। गल अज्जै अग्राज = आगे वाले मार्ग से जाइये।

कवित्त

गौरी पठए दूत, चले च्यारो चतुरन्नर।
लीय पत्नरि प्रथिराज, चले पच्छे गज्जन घर ॥
किय सलाम जब दूत, तब्बहि तत्तार सुबुझ्झिय।
कहा करंत दिलेस, चढ़त गिरवर धर धुज्जिय ॥
सँग सतषट्ठ सामंत चलि, तीन पाव लष्षह तुरी।
अनि सूरवीर नर वर सकल, चुड़ी पेह धर उप्परी ॥५॥

आषेटक दिन रमय, संग स्वान्न घन चीते।
नावक पावक विपुल, जक्कि दिन जामह जीते ॥
साहस तुरी बग्घह सु, संत मेघा कलि कंठिय।
सीहगोस पुच्छिय सु, लम्ब सिरषां सिर पुट्ठिय ॥
जुर्रा रु बाज कूही गुहा, धानुक्की दारू धरा।
बहु काल भाल वदकं बिला, जम भय तब जित्तिय धरा ॥६॥

कवित्त

रमै राज आषेट, सत्त एकल बल भंजै।
पंच पथ्य परिगाह, रंग अप्पन मन रंजै ॥

५—बुझ्झिय = पूछा। चढ़त गिरवर धर धुज्जिय = चढ़ते ही पहाड़ और पृथ्वी काँप उठते हैं। सतषट्ठ = ६७। तीन पाव लष्षह तुरी = सवा तीन लाख पैदल सेना। अनि = अन्य, दूसरे।

६—रमय = रमते हैं, खेलते हैं। घन = बहुत। नावक पावक...... जीते = बहुत से मल्लाह और तैराक उनके साथ हैं और उन्हीं के बीच में उनका दिन बड़े आनंद से व्यतीत होता है। मेघा = श्यामा पक्षी। कल कंठिय = मधुर कंठ वाले। सीहगोस = पक्षी विशेष (सारस)। पुच्छिय = पुछार, पूँछवाला। लंब...... पुट्ठिय = पीठ की तरफ़ सिर रखने वाले कबूतर आदि पक्षी। जुर्रा, बाज, कूही, गुहा = ये पक्षियों के नाम हैं। धानुक्की = धनुर्धारी। दारू धरा = बंदूक अथवा तोप चलाने वाले। बहु काल......बिला = बहुत काल से समय को देख रहा है। जम भय......धरा = यमराज के समान भयंकर वह तुम्हारी पृथ्वी को जीतेगा।

सहस एक बाजित्र, सूर किरनह संपेषै ।
सुनि गौरी साहाब, दाह दिल महन विसेषै ॥
जितौंव जब्ब प्रथिराज कों, तब तसबी कर मंडिहौं ।
टामंक सद्द नद्दह करों, जुगति साह तब छंडिहौं ॥७॥

दूहा

देस देस कग्गद फटे, पेसंगी षुरसान ।
रोम हबस अरु बलक में, फट्टे पहु अप्पान ॥८॥

कवित्त

सिलह लोह सज्जंत, लष्ष पंचह मिलि पष्षर ।
कूंच कूंच परि पैर, गुरज धारी लष्ष गष्षर ॥
कोस दहं दह कूच, आइ गिरवान सपत्तौ ।
दौरि दूत दिल्लेस, जाम कर त्रय दिन वित्तौ ॥
मुक्काम कियो प्रथिराज नृप, तहां षबरि करि दूत सब ।
गौरी नरिंद है गै सुभर, सजि आयौ उप्पर सु अप ॥९॥

७—सत्त = सात । एकल = अकेला । पंच पथ्थ = पाँच मार्ग (पूर्व, पश्चिम आदि चार दिशाएँ और पाँचवाँ आकाश) । पंच...... रंजै = पाँचों मार्गों को रोक कर उनके मध्य में अपने मन को प्रसन्न करता है । बाजित्र = बाजे । सूर किरनह संपेषै = जिसमें सूर्य्य की किरणों के समान तेज दिखाई पड़ता है । गौरी साहाब = शहाबुद्दीन गौरी । दाह दिल महन विसेषै = दिल में बहुत जलन हुई । जितौंव = जीत लूँगा । तसबी = माला । टामंक = नगाड़े । सद्द नद्दह = जोर का शब्द । जुगति साह तब छंडिहौं = तब तक के लिये मैं शाही युक्तियों (राजसी भोग) को छोड़ दूँगा

८—पेसंगी षुरसान = खुरासान की पेशवाई के लिये अर्थात् गौरी की सहायता के लिये ।

९—सिलह = हथियार । पष्पर = पखखर जाति के योद्धा । गष्पर = गक्खर जाति के योद्धा । गिरवान = स्थान विशेष । सपत्तौ = पहुँचे । सुभर = सामान । जामकर त्रय दिन वित्तौ = विश्राम कर के तीन दिन के व्यतीत होते ही ।

कवित्त

चैत मास रवि तीज, सेत पष्पह कल चंदह ।
भयौ सुदिन मध्यान, चढ्यौ प्रथिराज नरिंदह ॥
कटक सवर हिल्लोर, भार सेसह करि भग्गिय ।
चढि सामंत सकज्ज, नद्द सुर अंमर जग्गिय ॥
गज रोर सोर बंधे घटा, सिलह बीज सिलकावलिय ।
पप्पीह चीह सहनाइ सुर, नदि घग्घर मेलान दिय ॥१०॥

दूहा

आयौ आतुर उप्परह, पैसंगी पतिसाह ।
पच्छांई बादल प्रबल, भग्गे राह विराह ॥११॥
बरन बरह तहँ देषिये, घंटा रव गजराज ।
सन्नाहा सन्नाह रजि, पष्पर सष्पर साज ॥१२॥
भई हलोहल सेन सब, पान व्यूह वर खेत ।
लष्प एक भर अंग में, छत्र धरयौ सिर सेत ॥१३॥
हुअ टामंक सु दिसि विदिसि, हुअ संनाह सनाह ।
हुअ हलोहल सुम्भरन, दोऊ दिन इक राह ॥१४॥

१०—सेत पष्पह = शुक्ल पक्ष । करि = दिग्गज । अंमर = आकाश । चढ़ि...जग्गिय = सामंतों के उत्साह पूर्ण शब्दों से स्वर्ग और आकाश गूंज उठे । सिलह बीज = शस्त्रों के बीच में । सिलकावलिय = मोती की लड़ियाँ । चीह = चीख, चीत्कार ।

११—राह विराह = इधर उधर ।

१२—सन्नाहा सन्नाह रजि = सेना को कवच पहना कर । पष्पर = पाखर झूल ।

१३—हलोहल = हलचल । पान व्यूह वर खेत = अच्छे रण-क्षेत्र में सेना को पान के आकार में खड़ा किया । लष्प एक भर अंग में = एक लाख सेना के बीच में ।

१४—टामंक = नगाड़े । हुअ संनाह = सेनापतियों सहित अब लोगों ने कवच पहन लिये । सनाह = स + नाह = अधिपतियों सहित । सुम्भरन = संपूर्ण सेना में । दोऊ दिन इक राह = दोनों दीन (हिंदू और मुसलमान) एक मार्ग पर थे अर्थात दोनों ही जीत के लिये लालायित थे ।

त्रोटक

हुअ सद्द सुसद्दह नद्द भरं, घन घेरिक कीय सु फौज वरं।
लष लष्ष मिले दल संमिलयं, नर भद्दव वाहल संमिलियं ॥१५॥
सु अग्गे हथनारि अपार सजं, तिन देषत काइर दूर भजं।
तिन पिट्ठ हज़ारउ मत्त चलैं, छह रित्त भरंत करी तिहलै ॥१६॥
तिन पिट्ठह फौज गहब्बरयं, धरि गोरिय मुट्ठ कर धरियं।
कमनैंत अभूल सु लष्ष लियं, तिन मध्य ततारंह छत्र दियं ॥१७॥
लष दोय गुरज्ज स गष्षरियं, षुरसान दियं दल पष्षरियं।
बलकी उमराव सु सत्त सयं, निसुरत्तह लष्षह कम्म भयं ॥१८॥
षुरसान तनं दल उप्पटयं, मनु साइर सत्त उलट्ठ भयं।
जलवानिय पानिय अद्ध सरं, लोहानिय पानिय खेतवरं ॥१६॥
हवसी उजबक्क हमीर भरं, कलवानिय रूम्मिय अग्ग धरं।
सरवानि ऐराकि मुगल्ल कती, बहु जाति अनेक अनेक भती ॥२०॥

१५—सद्द=शब्द। लष लष्ष...संमिलियं=लाख लाख मनुष्यों का बना हुआ दल भादों के मेघों की तरह शोभायमान था। वाहल=बादल।

१६—सुअग्गे=अग्र भाग में। तिन पिट्ठ=उनके पीछे।

१७—गहब्बरयं=बड़ी। धरि...धरियं=उस के सिर (मुट्ठ) पर गौरी ने हाथ रखा अर्थात् उसके सेनापति गौरी बने। कमनैंत=धनुर्धारी। अभूल=अभूल जाति के। तिन मध्य...दियं=उनके मध्य में तातारखां ने छत्र धारण किया अर्थात् तातारखां उनका सेनापति बना।

१८—गुरज्ज=गुर्जधारी। सत्त सयं=सात सौ। निसुरत्तह=निसुरह जाति के योद्धा। बलकी उमराव=बलकानीय उमराव। भयं=हुआ।

१९—षुरसान...भयं=खुरासानियों का दल चला, वह ऐसा मालूम होता था मानो सातों समुद्र उलट रहे हों। जलवानिय=जलकान जाति के लोग। लोहानिय=लोहाना जाति के लोग। खेतवरं=रणभूमि में उपस्थित थे।

२०—हवसी, उजबक, हमीर, कलवानी, रूमी, सरवानी, ऐराकी, मुग़ल आदि मुसलमानों की जातियों के नाम हैं।

कवित्त

फौज बंधि सुरतान, मुष्ष अग्गे तत्तारिय।
मधि नायक सुरतान, नील पुरसान सु भारिय ॥
मोती निसुरति पान, लाल हबसी कोलंजर।
पाचि पीठि रुस्तंम, पना बहु भाँति अवर नर ॥
उत्तरिय नद्द गोरीस पहुं, बज्जा दस दिसि बज्जिया।
मानों कि भद्द उलटी मही, साइर अंबु गरज्जिया ॥२१॥

दूहा

दिल्लीपति फौजह रची, दियौ जैत सिर छत्र।
चामंडराय अग्गै भयौ, मनों सु गिरवर गत्त ॥२२॥

कवित्त

फौज रची सामंत, गरुड़ व्यूहं रचि गढ्ढिय।
पंप भाग प्रथिराज, चंच चावंड सुगढ्ढिय ॥
गावरि अत्तातइ, पाइ गोइंद सुठढ्ढिय।
पुच्छ कन्ह चौहान, पेट पम्मारह पढ्ढिय।
सुंडाल काल अग्गों धरे, कढे दोइ कलहन्न किय।
चालंत बान गौरे प्रबल, मानहु अंधकि मार दिय ॥२३॥

२१—तत्तारिय = तातार खाँ। मधि नायक = मध्य भाग का नायक। सुरतान = सुलतान गौरी। नील = नीलम मणि। निसुरति पान = निसुरत्ति खाँ। लाल हबसी कोलंजर = हबसी और कालिजर लाल के समान। पना = पन्ना।

२२—जैत = जैतराय पँवार। गत्त = शरीर।

२३—गरुड़ व्यूहं रचि गढ्ढिय = गरुड़ व्यूहाकार में खड़ा किया। पंष भाग प्रथिराज = पंख भाग में पृथ्वीराज रहे। चंच चावंड सुगढ्ढिय = चोंच भाग में चामुंडराय नियुक्त हुआ। गावंरि = गर्दन। अत्तातइ = अत्ता-ताई (नाम विशेष)। पाइ गोइंद सुठढ्ढिय = चरण भाग में गोइन्द राय ठहरे। कन्ह = यह पृथ्वीराज का चाचा था। पेट पम्मारह पढ्ढिय = उदर भाग परमार वंशी वीर (जैतराय) के अधीन रहा। संडाल काल = मदोन्मत्त हाथी। कढे दोइ कलहन्न किय = दोनों

तत्तारह उप्परह, चित्त चावंड चलायौ।
दूहूं फौज़ अग्गंज, दुहूं भुज भार भलायौ॥
मीर बान बरषंत, धार धारा हर लग्गौ।
वाही चामंडराय, भूमि तत्तारह भग्गौ॥
उत्तरे मीर से पञ्च दुइ, दाहिम्मै किन्नौ दहन।
पहिले जु फुज्झ दिन पहिलकै, मच्यौ जुद्ध जानैं महन॥२४॥

कवित्त

भूमि परयौ तत्तार, मारि कमनेत प्रहारै।
एक घाव दोइ टूक, परे धारन मुहु धारै॥
षुर बज्जै षुरतार, चमकि चामंड चलायौ।
भरै बथ्थ सिर हथ्थ, एक बहु लष्षन धायौ॥
जब परै बूंद तब वीर हुअ, संत्त घरी साहस धरै।
तिनमा कटक्क त्रिबिधी घड़ा, एक एक पग अनुसरै॥२५॥

तरफ़ से निकल कर सेनाएँ युद्ध करने लगीं। चालंत... दिन = गोरी की सेना पर ऐसे प्रबल बाण पड़ते थे, मानों आँधी का धक्का लग रहा हो।

२४—चित्त चावंड चलायौ = चामुंड राय ने मारना चाहा। अग्गंज = आगे बढ़ कर। भलायौ = दिखाया। मीर = मुसलमान। धार धारा हर लग्गौ = मानों मुसलाधार वर्षा होने लगी हो। से पञ्च दुइ = पाँच सौ के दूने; एक हज़ार। दाहिम्मै = दाहिम्म नामक सामंत ने। किन्नौ दहन = जला दिया; मार दिया। पहिले...महन = पहले दिन का पहला ही युद्ध ऐसा भयंकर हुआ कि मानों समुद्र मंथन के समय का (देवासुर-संग्राम)।

२५—मारि कमनेत प्रहारै = बाण मार कर प्रहार करता है। षुरतार = घोड़े के पाँवों की नाल। एक बहु लष्षन धायो = अकेला ही बहुतों को लक्ष्य कर दौड़ा। त्रिविधी घड़ा = गर्मी के दिनों में शिवजी की मूर्ति के ऊपर लकड़ी की तिपाई (त्रिपदिका) बना कर, उस पर जल का घड़ा रख देते हैं। इस घड़े के पेंदे में एक छोटा-सा छेद बना कर उसमें कपड़े

पान पान आखूंद, अट्ठ सहसं बहु गष्षर।
परिय पंति अवनेस, पारि बहु अप्पर गष्षर॥
हयौ नेज चामंड, वीर दो सहस लरै भर।
हस्ति एक विन दंत, तमह तिन मथौ सहस कर॥
दाहिम्मराय मुरछ्यो परयौ, दौरयौ जैत महा बलिय।
मानों कि अग्ग जज्जर बही, कलि मभ्भै रिन वट कलिय॥२६॥

कवित्त

धपी सेन सुरतान, मुट्ठि छुट्ठी चावद्दिसि।
मनु कपाट उद्धरयौ, कहू फुट्टिय दिसि त्रिद्दिसि॥
मार मार मुष किन्न, लिन्न चावंड उपारे।
परे सेन सुरतान, जाम इक्कह परि धारे॥
गल वथ्थ धत्त गाढौ ग्रह्यौ, जानि सनेही भिट्टयौ॥
चामंडराइ करि वर कहर, गौरी दल बल कुट्टयौ॥२७॥
जैतराइ जडधार, लियो कर दंत मुष्ष कर।
परे वज्र सिर धार, मनों सेना सिर उप्पर॥
षुरसानी बंगाल, मनहु डंहूर रमावै।
भरै पत्र जोगिनी, डक्क नारद्द बजावै॥
अपछरा गीत गावत इला, तुंबर तंत बजावहीं।
सुरतान सेन दिल्लेस वर, मग्ग मग्ग जस गावहीं॥२८॥

की वत्ती डाल देते हैं जिससे थोड़ा थोड़ा पानी दिन भर गिरता रहता है। तिनमा...अनुसरै = वीरों के मध्य में चामुंडराय त्रिविधी घड़े की भाँति एक एक पाँव आगे बढ़ता था।

२६—पान पान = ख़ानख़ाना। आखूंद = नाम विशेष। नेज = नेजा। मानों कि अग्ग जज्जर वही = मानो आग सूखे बाँसों को जला रही हो।

२७—धपी = तृप्त हो गई, लड़ाई से घबड़ा गई। मुट्ठि छुट्ठी चावद्दिसि = चारों दिशाओं में मूठ छूट गई, तितर बितर हो गई। कूह फुट्टिय = कुहराम मच गया। वथ्थ = वस्त्र। जानि सनेही भिट्टयो = मानो कोई बड़ा स्नेही मिला हो। कहर = हलचल। कुट्टयौ = पीटा, परास्त किया।

२८—ज़ड़धार = तलवार की धार; खड्ग प्रहार। पत्र = पात्र,

कवित्त

सिर धूनत पतिसाह, धाह सुनि सेना सथ्थिय।
लुथ्थि लुथ्थि मुह धार, परे बथ्थन सों वथ्थिय।
जम सों जम अहुरै, सूर जुट्टै दोइ बुट्टै।
नई गंठि तन जोग, सूर मुंडावलि घुट्टै॥
षुरसान जैत अब्बू धनिय, धार धार मुंह कट्टिया।
ऐसो न जुद्ध दिष्यौ सुन्यौ, दारुन मेछ दवट्टिया॥२९॥

मनु द्वादस सूरज्ज, हथ्थ चन्द्रमा महासर।
जिन उप्पर षलमलै, ताहि धर गोरिय सुम्भर॥
कटक कूह किलकार, सार परमार बजायौ।
भिरि भंज्यौ सुरतान, एक एकह मुष धायौ॥
सिर सार धार बुढयौ प्रहर, तब दौरयौ पज्जून भर।
निसुरत्तिषान लष्षह बली, लष्ष एक पाइल सुभर॥३०॥

भुजंगी

मचे कूह कूहं बहै सार सारं, चमक्कैं चमक्कैं करारं सुधारं।
भभक्कै भभक्कै बहै रत्त धारं, सनक्कैं सनक्कैं बहैं बान भारं॥३१॥

डक्क=वीणा। इला=सरस्वती। तुंबर तंत=वीणा के तार।

२९—धाह=आवाज़। लुथ्थि=लोथ। परे बथ्थन सों वथ्थिय=खून से लथपथ होकर वस्त्र से वस्त्र चिपक गये थे। जम सों जम आहुरैं=मानों यमराज से यमराज भिड़ गये हों। मुंडावलि=शिर। अव्बू धनिय=आबू का स्वामी। जैत=जैतराय। धार धार मुँह कट्टिया=तलवार की धार से मुँह काट दिये। दारुन मेछ दवट्टियाँ=म्लेच्छों की भारी सेना दब गई।

३०—द्वादस=बारह। सूरज्ज=सूर्य्य। हथ्थ चन्द्रमा महासर=हाथ में बड़ा धनुष चंद्रमा के समान दिखाई पड़ता था। सार=तलवार। पज्जून=पज्जूनराय। पाइलसुभर=श्रेष्ठ पैदल सेना।

३१—मचे कूह कूहं=कुहराम मच गया। वहै सार सारं=सर सर

हवक्कैं हवक्कैं वहैं सेल भेलं, हलक्कैं हलक्कैं मची ठेल ठेलं।
कुकैं कूक फूटी सुरताज ठानं, वकी जोग माया सुर अप्प थानं ॥३२॥
वहै चट्ट पट्टं उघट्टं उलट्टं, कुलट्टा धरै अप्प अप्पं उहट्टं।
दडक्कं वजे सथ्थ मथ्थं सुट्टं, कडक्कं वजै सेन सेना सुघट्टं ॥३३॥
वहै हथ्थ परमार सिरदार सारं, परे सेन गोरी वहै रत्त धारं।
परयौ पान निसुरत्ति सेना सहित्तं, हुऔ सूर मध्यान दिल्लेस जित्तं ॥३४॥

कवित्त

कालंजर इक लप्प, सार सिंधुरह गुड़ावै।
मार मार मुष चवै, सिंघ सिंघा मुष धावै॥
दौरि कन्ह नर नाह, पटी छुट्टी अंषिन पर।
हथ्थ लाइ किरवार, रुंडमाला निम्रिय हर॥

की आवाज़ करती हुई तलवारें चलने लगीं। करारं सुधारं = तेज़ धारें चमकने लगीं। भभकै भभकै वहै रत्त धारं = खल् खल् शव्द के साथ रक्त की धाराएँ प्रवाहित होने लगीं। सनक्कैं सनक्कैं वहैं वान भारं = वाणों का समूह सनासन चलने लगा।

३२—हवक्कैं हवक्कैं वहैं सेल भेलं = हवक हवक कर भाले घुसने और निकलने लगे। हलक्कैं हलक्कैं मची ठेल ठेलं = हाय-हाय और ठेला ठेल मच गई। कुकैं कूक फूटी = सुरतान की सेना में कुहकार फूट उठी।

३३—वहै चट्ट पट्टं उघट्टं उलट्टं = वड़ी फुर्ती के साथ (वीर गण) उलट-पलट कर (इधर-उधर) हथियार चलाने लगे। दंडक्कं वजै = धनुष की टंकार होने लगी। मथ्थं सुटट्टं = कटे हुए मस्तकों का ढेर लग गया। कडक्कं वजै सेन सेना = सेना में कड़ाका बज गया अर्थात् आतंक छा गया। सेना सुघट्टं = सेना में संघर्ष होने लगा; मुठभेड़ हो गई।

३४—हुऔ सूर मध्यान दिल्लेस जितं = मध्यान्ह काल तक दिल्ली-पति पृथ्वीराज की जीत हो गई।

विहु बाह लष्ष लोहे परिय, छानि करिव्वर दाह किय।
उच्छारि पारि धरि उप्परें, कलह कियो कि उघान क्रिय ॥३५॥

भुजंगी

छुटी अंषि पट्टी मनो डग्गि सूरं, गिरे काइरं सूर बढ्ढे सनूरं।
लियं हथ्थ करिवार भंजै कपारं, पियै जोगनी पत्र कीयै डकारं ॥३६॥
बहै अच्छरी हथ्थ अनेक सथ्थं, करं सूर संम्हालियै घल्लि बथ्थं।
करै कज्ज साई समप्पै सुघट्टं, लियं कन्ह गोरी तनं मारि थट्टं ॥३७॥

कवित्त

कालञ्जर जव परिय, भग्गिय सेना पतिसाहिय।
पंच फौज एकट्ठ, कन्ह करवारि सम्हारिय॥
धर पारे बहु मीर, सथ्थ जव सेना भग्गिय।
गर घत्ती कमान, लियो गोरीय उछंगिय॥

३५—कालंजर = मुसलमानों की एक जाति विशेष; सेनापति का नाम। सार सिंधुरह गुड़ाबै = श्रेष्ठ हाथियों को घुमाते हुए। चबै = कहते हुए। पटी छुट्टी अंषिन पर = कन्ह की आँखों पर से पट्टी उतार ली गई। कन्ह = ये पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के सगे भाई थे। इनका प्रण था कि अपने सामने ये किसी को भी मूछों पर हाथ फेरते हुए न देखेंगे। इस संबन्ध में ये कई लोगों से झगड़ भी चुके थे और कइयों को मार भी डाला था। इस तरह के झगड़ों का अंत करने के लिये पृथ्वीराज ने इनकी आँखों पर पट्टी बँधवा दी थी जो सिर्फ लड़ाई के वक्त उतारी जाती थी किरवान = कृपाण। हर = महादेव।

३६—मनो डग्गि सूरं = मानो सूर्य निकला हो। सूर बढ्ढे सनूरं = वीरों में उत्साह उमड़ आया। करिवार = तलवार। पियै जोगिनी पत्र = योगिनी पात्र भर भर कर (रक्त) पीने लगी। कीयै डकारं = तृप्त होकर डकार लेने लगीं।

३७ = अच्छरी = अप्सराएँ। लियं कन्ह गोरी तनं मारि थट्टं = कन्ह ने मार मार कर यवनों के ठट्ट लगा दिये और गोरी को जा दबाया।

उत्तरे मीर पच्छे फिरे, हाय हाय मुष हुंकरयौ ।
पज्जून झेलि मुप मीर कौ, कन्द लेइ गोरी बरयौ ॥३८॥

जनु उद्यान हलाइ, पवन चल्लै ज्यौं बांधै ।
त्यौं पज्जून नरिंद, मीर जमदड्ढै सांधे ॥
परे मीर से सत्त, विए रनछंडिव भज्जे ।
चामर छत्र रपत्त, तपत लुट्टे ज्यों सज्जे ।
कान्हा नरिंद पतिसाह ले, गयौ थान अप्पन अलिय ।
पंमार सिंध लग्यौ सुपय, चाव भाव कीरति चलिय ॥३९॥

कवित्त

रहैं कन्ह अजमेर, गयौं चहुआन जैत लिय ।
धरिअ ग्गोरी नरिंद, दौरि प्रथिराज सुद्ध दिय ॥
गयौ अप्प अजमेर, लिये पतिसाह नरिंदह ।
दिन किज्जे महिमान, पास ठढ्ढा रहे वृंदह ॥
बैठारि तपत सिर छत्र दिय, सभा विराजे सु पहुँभर ।
सिर फेरि पैर दिज्जै दुनी, यौं रष्षै पतिसाह दर ॥४०॥
एक लप्प बाजित्र, सहस तीनह मय मत्तह ।
लष्ष एक तोषार, तेज ऐराकी तत्तह ॥

३८—धर पारे बहुमीर = बहुत से मुसलमानों को धराशायी किये । गर धत्ती कंमान = गले में कमान डाल कर । उछंगिय = उछल कर । पज्जून झेलि मुख मीर कौ = पज्जूनराय ने यवनों को सामने से रोक लिया । बर्‌यौ = बढ़ा, गया ।

३९—हलाइ = हिलाकर । मीर जमदड्ढै सांधै = मीरों को यमराज की दाढ़ से सांधने लगा अर्थात् मार मार कर यवनों को यमलोक पहुँचाने लगा । सै सत्त = सात सौ । विए = दूसरे । चाव भाव कीरति चलिय = प्रेम पूर्वक हाव-भाव करती हुई कीर्ति चली; चारों ओर विजय का यश फैल गया ।

४०—धरिअ ग्गोरी = गोरी को पकड़ कर । दौरि प्रथिराज सुद्ध दिय = दौड़ कर पृथ्वीराज को सूचित किया । दिन किज्जै महिमान = दिन में आतिथ्य किया जाता । पास ठढ्ढा रहै वृंदह = झंड के झुंड पास खड़े रहते ।

आराबा हथ्थिनी, सत्त सै सत्त सु भारिय।
चामर छत्र रषत्त, साहि लिन्निय धर सारिय॥
सामंत सूर बहु विधि भरिग, पट्टे घाव सु बंधियै।
रन जीत सोधि संभर धनीं, बज्जे अनत सु बाजिय॥४१॥

कवित्त

रची सभा प्रथिराज, सूर सामंत बुलाए।
गोयँदद निड्डुर सलष, कन्ह पतिसाह पठाए॥
करौ दंड सिर छत्र, राम प्रोहित पुंडीरह।
रा पज्जून प्रसंग, राव हाहुलि हंमीरह॥
इत्तने मत्त मझ्झह मिले, हम मारैं छोरैं न अब।
ह्वै है न हास्य अबकें हमैं, फिर न आइहै इह सु कब॥४२॥

दिये देस षंधार, दिए पछिवानं सारं।
कासमीर कबिलास, दिए धरटिला पंहारं॥
गज्जन रष्षै देस, बियौ समपै प्रथिराजह।
नातरु छुट्टै नाहिं, करैं हम उप्पर काजह॥
बोल्यौ कन्ह नरनाह सुनि, अबकैं मारैं कोइ नहि।
पंजाब दियौ छुट्टै सु अब, यह हमीर दिज्जैं हमहि॥४३॥

४१—बाजित्र = बाजे। सहस तीन मय मत्तह = तीन हजार मदोन्मत्त हाथी। तोषार = घोड़े। ऐराकीं = एक देश के। चामर...... सारिय = चामर, छत्र आदि सब सामान गोरी को पकड़ने के बाद पृथ्वीराज ने अपने अधिकार में कर लिया। पट्टे घाव सु बंधियै = घावों के पट्टियाँ बँधवाई। बज्जे अनत सु बज्जिय = जीत के अनन्त बाजे बजवाये।

४२—इतने मत्त......अब = इतनों ने एक मत होकर कहा कि अब की बार हम गोरी को मारेंगे, छोड़ेंगे नहीं। ह्वै है न हास्य = हमारी हँसी न होगी। फिर न आइहै इह सु कब = यह भी फिर कभी न आवेगा।

४३—षंधार = कंधार, अफगानिस्तान का एक नगर। पछिवानं सारं = समस्त पश्चिम देश। कासमीर कबिलास = काशमीर, क़ाबुल आदि। धरटिला = पृथ्वी के टीले। गज्जन रष्षै

कवित्त

तब बुल्यौ प्रथिराज, कहे काका त्यौं किजिय ।
जेता रञ्जक होइ, तिता लादा भरि लिज्जिय ॥
जग्ग कियौ पंडवन्न, हेम काचौ उन ग्रान्यौ ।
त्यों लभ्यौ पतिसाहि, लष्ष लोहा हम मान्यौ ॥
करि दंड कन्ह पतिसाह को, लोहानौ सथ्थै दियौ ।
असवार सहस सथ्थै चलें, कर सिर कन्ह इतौ कियौ ॥४४॥

करि जुहार तब कन्ह, कयौ अजमेर दुरग्गह ।
तज्यौ कन्ह पतिसाह, बत्त सब जंपी अप्पह ॥
है पुसाल गजनेस, दई इक लाल सहित मनि ।
कन्ह लेइ पतिसाह, गयौ दिल्ली सु ततच्छन ॥
मनुहार करिय सामन्त सब, तेग दई दिल्लेस बर ।
दो अश्व करी दोइ देय करि, साहि चलायौ अप्प घर ॥४५॥

कवित्त

करि सलाम गजनेस, करिय नव निह दिल्लेसर ।
तम रपियो हम प्रीति, बरष मन सत्तह केसर ॥
पेसंगी धर सीम, बीच पौरान कुरानं ।
जा तक्कौ तुम अबे, तबे तुम कढियौ प्रानं ॥
उत्तरौं अटक तौ मैं अवर, मुसलमान नाहीं धरौं ।
तुम हम सु प्रीति चलिहै बहुत हूँ न अबे ऐसी करौं ॥४६॥

देस = ग़ज़नी देश को अपने पास रखे। बियौ समपै प्रथिराजह = दूसरे सब पृथ्वीराज को दे दे।

४४—जेता रंजक होइ = जितनी इच्छा हो। पंडवन्न = युधिष्ठिर, भीम आदि पांडवों ने। हेम काचौ = कच्चा सोना। लष्ष लोहा हम मान्यौ = एक लाख का दंड लेकर छोड़ देना हम ठीक समझते हैं। लोहानौ = लोहाना नामक वीर को।

४५—बत्त सब जंपी अप्पह = अपनी सब बात कह सुनाई। है पुसाल = प्रसन्न होकर। दो अश्व करी दोइ देय करि = दो घोड़े, दो हाथी देकर।

४६—करिय नव निह = नमन किया; सलाम किया। बरष......

पहु चल्यौ सुरतान, दियौ लोहानौ सथ्थै।
दूत च्यारि अनुसार, काल छुट्यौ सें हथ्थै॥
गयौ बीस म्होलान, अटक उत्तरि इन पारं।
सोवन पंथ मेलान, सहस सम्हे असवारं॥
निसुरत्ति सुतन दरिया सुतन, आइ कियौ सल्लाम तहाँ।
अजान बाह महिमान किय, चल्यौ अप्प गज्जन रहाँ॥४७॥

कवित्त

रयसल हरी नवट्ट, सहस अट्टारह सथ्थें।
हेरा करि पतसाह, पुले लग्गा इन पथ्थें॥
दूत च्यार अनुसार, कटक देष्यौ असवारह।
कह्यौ चरन सब सथ्थ, सहस दोइ सेना सारह॥
तिन बार बज्जि त्रंबाल बहु, सिलह सजि सिरदार सहु।
उतरयौ कटक छोरिय अटक, नद्दि हुऔं उग्गंत बहु॥४८॥

केसर = हे केसरी! तुम सच्चे मन से हम पर प्रीति रखना। पेसंगी......प्रानं = पुराण और कुरान को बीच में लेकर गोरी ने प्रतिज्ञा की कि जो यदि फिर कभी आप की तरफ़ देखूँ अर्थात् आपके राज्य पर आक्रमण करूँ तो प्राण दंड देना।

४७—पहु चल्यौ सुरतान = प्रभु सुलतान चला। काल छुट्यौ सें हथ्थै = मानो मौत के हाथों से निकल कर चला। सोवन पंथ ......असवारं = सोवन पंथ के मैदान में एक हज़ार सवार उसके सामने आये। निसुरत्ति = निसुरतिख़ाँ। दरिया = दरियाख़ाँ। सुतन = लड़के। रहाँ = रास्ता।

४८—नवट्ट = नव वयस्क, जवान। पुले लग्गा इन पथ्थें = मार्ग में पुल पर ठहर गया। कह्यौ......सारह = रयसल्ल के चरणों में आकर कहा कि कुल मिलाकर दो हज़ार सेना साथ है। त्रंबाल = नगाड़े। सिलह = हथियार। नद्दि हुऔ उग्गंत पहु = नदी के पार होते ही सूर्योदय हुआ।

गाथा

वज्जै पुठि त्रंबालं, हथ्थिय नेज सु उप्परं फहरं ।
जानि समुद्द उहालं, किय गजनेस हुकमयं मीरं ॥४६॥

कवित्त

कह्यौ साह लोहान, कौन बज्जा बज्जाए ।
दौरि दूत तिन वेर, धनी पछिवानह धाए ॥
कूच कूच पर कूच, कौन पछिवान धनी कहि ।
तब जान्यौ रयसल्ल, सेन आजान बर्यौ सह ॥
पतिसाह चलौं हौं पछि रहौं सहस डेढ असवार दिय ।
बंधेव फौज लोहान वर, दुहूँ फौज टामंक किय ॥५०॥

कवित्त

अरुन किरण परसंत, आइ पहुँच्यौ रयसल्लं ।
वज्जे वान विहंग, जानि जुट्टा दोइ मल्लं ॥
संमाही आजान, तेग मनहु हवि दिट्ठिय ।
जानि सिपर मझि वीज, कंध रैसल्लह बुट्ठिय ॥
लोहान तनी वज्जे लहरि, कोउ हल्ले कोउ उत्तरै ।
परनाल रुधिर चल्लै प्रवल, एक घाव एकह मरै ॥५१॥

४९—भावार्थ—पृष्ठ भाग में बाजे वज रहे हैं; हाथियों पर झंडे फहरा रहे हैं, मानो समुद्र बढ़ रहा हो। ग़ज़नी-पति ने यवनों को तैयार हो जाने की आज्ञा दी।

५०—तिन वेर = उस समय। धनी पछिवानह धाए = पश्चिम के देशों का स्वामी दौड़ता हुआ आ रहा है। बंधेव फौज लोहान वर = वीर श्रेष्ठ लोहाना ने अपनी सेना को व्यूह बद्ध किया। दूहूँ फौज टामंक किय = दोनों सेनाओं ने नगाड़े बजवाये।

५१—अरुन किरण परसंत = सूर्य-किरणों के स्पर्श होते ही; सूर्य के निकलते ही। वज्जे वान विहंग = पक्षियों के समान वाण उड़ने लगे। जुट्टा = भिड़ गये। संमाही आजान = आजानबाहु लोहाना सामने आया। तेग मानहु हवि दिट्ठिय = तलवार क्या थी, मानों अग्नि की लाट थी। बीज = बिजली। कंध रैसल्लह बुट्ठिय = रयसल्ल के कंधे पर पड़ी। तनी = की। लोहान तनी

दूहा

मुह मुह चमकै दामिनी, लोह वज्यौ लोहान ।
इक उप्पर इक इक्क तर, लुथ्थें लुथ्थ समान ॥५२॥
पथ्यौ लुथ्थि रयसल्ल तहं ढुंढि षेत लोहान ।
सुबर साह गौरी निभय, गयौ सुगज्जन थान ॥५३॥

कवित्त

तत्तारिय षुरसान, सुतन गौरी पय लग्गा ।
न्यौछावर करि पैर, बहुत मनसा भय भग्गा ॥
लष्ष एक असवार, मिल्यौ गौरी दल पष्पर ।
लष्ष भये दरवेस, आइ पइ लग्गे गष्पर ॥
उच्छाह भयौ गज्जन इला, गयौ मभ्भूभि गोरी धनिय ।
दरबार मीर मीरन्न धन, मिलत आइ अप अप्पनिय ॥५४॥

डेरा दिय लोहान, करिय मनुहारि रोज दस ।
करिय सत्त आजान, तुरिय पंचास अप्प बस ॥
इह दिन्नौ लोहान, वियौ भेज्यौ नृप राजं ।
लादे दोइ हजार, सत्त से तोला साजं ॥

वज्जे लहरि = लोहाना की तेज तलवार चली । कोउ हल्ले उत्तरै = कोई चिल्लाता था, कोई मर जाता था । परनाल = बड़ा नाला । एक घाव एकह मरे = एक ही मार में एक मर जाता था ।

५२—लोह वज्यौ = तलवार चली । इक......समान । एक के ऊपर एक गिरने से लोथों का ढेर लग गया था ।

५३—पथ्यौ लुथ्थि रयसल्ल तहं = वहाँ रयसल्ल की लोथ भी पड़ी हुई थी । सुबर = परम श्रेष्ठ । थान = स्थान ।

५४—मनसा भय भग्गा = चित्त का भय दूर हो गया । लष्प भये... गष्पर = साधु वेषधारी एक लाख गख्खर जाति के मुसलमान गोरी के चरणों में आकर गिरे । उछाह = उत्साह । इला = पृथ्वी, राज्य । मिलत आइ अप अप्पनिय = लोग आपस में एक दूसरे से मिलने लगे ।

इक इक्क तुरी हथ्थी सु इक्क, सामंतन दीनौं सबै ।
मुंह करिय कित्ति अनेक विधि, सुवर सूर फेरिय जबै ॥५५॥

कवित्त

सीग दई लोहान, चल्यौ दिल्लीय पंथानं ।
संग सहस असवार, अप्परिध वासव यानं ॥
दिल्लीपति सामंत, कुली छत्तीसह दष्षै ।
मिल्यो वाह आजान, बत्त सुरतान सु अष्षै ॥
इक इक्क तुरिय हथ्थी सु इक, सामंतन पठए घरैं ।
सोवन्न रासि रंजक पहर, मुक्कलियौ चित्रंग पुरैं ॥५६॥

गढ़ चीतोड़ दुरग्ग, भट्ट पठयौ परिमानं ।
लादे सित्त सुरङ्ग, सित्त लै तुला प्रमानं ॥
दोइ हथ्थी मय मत्त, सत्त हैवर कुल राकिय ।
छत्र लियौ पतिसाह, जड़ित मनि मानिक साकिय ॥
लै चंद चल्यौ चित्तोरगढ़, जाइ समप्पौ रावरह ।
बहु दान दियौ रावर समर, चल्यौ भट्ट अप्पन घरह ॥५७॥

—:०:—

५५—करिय सत्त = सात हाथी । आजान = आजानबाहु लोहाना को । बियौ भेज्यौ नृप राजं = दूसरी वस्तुएँ पृथ्वीराज के पास भेजीं । लादे......साजं = दो हजार सात सौ तोला सोना लदा कर भेज दिया । मुह करिय......जबै = जब लोहाना को भेजा तब मुँह से उसकी बड़ी प्रशंसा की । सुबर सूर = श्रेष्ठ वीर ।

५६—अप रिध वासव यानं = अपनी संपति के सहित इन्द्र के समान यात्रा की । दिल्लीपति...दष्षै = दिल्लीपति को छत्तीस कुलके सामंतो सहित देखा । बत्त सुरतान सु अष्षै = सुलतान की सब बातें कह सुनाई । चित्रंग पुरैं = चित्तौड़ ।

५७—भट्ट = भाट; चन्दबरदाई । सित्त स्वरङ्ग = उज्ज्वल और रंग बिरंगे । सित्त लै तुला पुमानं = ठीक तरह से तौल कर के । रावरह = रावळ समरसिंह को ।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज बीकानेर राज्य के संस्थापक, इतिहास—प्रसिद्ध राव बीकाजी के वंश में से थे। इनका जन्म वि० सं० १६०६ के मार्गशीर्ष में हुआ था। इनके पिता का नाम कल्याणमल और दादा का जैतसी था। सम्राट अकबर के प्रसिद्ध सेनापति महाराजा रायसिंह इनके बड़े भाई थे। पृथ्वीराज बड़े वीर, स्वदेशाभिमानी एवं स्पष्टभाषी पुरुष थे और सहृदय कवि होने के साथ साथ संस्कृत—साहित्य, दर्शनशास्त्र, ज्योतिष, छंदशास्त्र, संगीतशास्त्र आदि कई विषयों में पारंगत थे। मुग़ल सम्राट अकबर के ये बड़े प्रीतिप्रात्र थे और इस लिये बादशाह के पास दिल्ली—आगरे में ही प्रायः रहा करते थे। ये भक्त भी उच्चकोटि के थे। भक्तवर नाभादास ने भी अपने 'भक्तमाल' में स्थान देकर इनके काव्य की बड़ी सराहना की है :—

सवैया, गीत, श्लोक, वेलि, दोहा गुण नव रस।
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विध गायो हरि जस॥
परि दुख विदुष सश्लाघ्य वचन रसना जु उचारै।
अर्थ विचित्रन मोल सबै सागर उद्धारै॥
रुक्मिणी लता वर्णन अनूप वागीश वदन कल्याण सुव।
नरदेव उभय भाषा निपुण प्रथीराज कविराज हुव॥

पृथ्वीराज ने दो विवाह किये थे। इनकी पहली स्त्री लालादे परम लावण्यमयी एवं सहृदया महिला थी। पृथ्वीराज भी उस से बहुत प्रेम करते थे। पर दैव—दुर्विपाक से उसकी अकाल मृत्यु हो गई जिससे इन्हें दूसरा बिवाह करना पड़ा। इस वार इनका उद्वाहन जैसलमेर के रावल हरराज की कन्या चाँपादे से हुआ। पृथ्वीराज का ख्याल था कि लालादे जैसी निपुण और गुणवती स्त्री उन्हें फिर न मिलेगी। और इसलिये वे अपना दूसरा विवाह करना भी नहीं चाहते थे। पर उनकी यह शंका निर्मूल सिद्ध हुई। रूप—गुण—रसज्ञता में चाँपादे दिवंगत लालादे से भी बढ़ कर निकली। उसके रूपालोक से पृथ्वीराज का गृहिणी—विहीन गृह पुनः दीप्तिमान हो उठा और लालादे

के अभाव को वे भूल गये। चाँपादे सुन्दर थी, चतुर थी, हंसमुख थी पर सर्वप्रधान गुण उसमें यह था कि वह काव्य—रचना में भी सिद्धहस्त थी। अपनी जीवन—नौका को खेने के लिये जैसा केवट पृथ्वीराज चाहते थे वैसा ही उन्हें मिला भी। दंपति परम सुखी एवं संतुष्ट थे। वे एक दूसरे की कविताएं सुनते, उन्हें सराहते, उनमें काट-छाँट करते, उनकी आलोचना—प्रत्यालोचना करते और सदोष हुई तो व्यंग—वृष्टि द्वारा एक दूसरे का मन भी बहला लेते थे। दोनों की आपस में खूब पटती थी।

एक दिन पृथ्वीराज सामने दर्पण रख कर अपने बालों में कंघी कर रहे थे कि उन्हें अपनी दाढ़ी में एक सफ़ेद बाल दीख पड़ा। उसे उन्होंने उखाड़ कर फेंक दिया पर पीठ पीछे खड़ी हुई चाँपादे यह लीला देख रही थी। वह चुपके से दो कदम पीछे हट गई और मुँह फेर कर हँसने लगी। उसके प्रतिबिंब को दर्पण में देखकर पृथ्वीराज ने पीछे देखा और फिर लज्जा विमिश्रित स्वर से बोले :—

पीथळ धोळा आविया, बहुळी लग्गी खोड़।
कामण मत्त गयंद ज्यूँ, ऊभी मुक्ख मरोड़॥[1]

पृथ्वीराज की ग्लानि को मिटाने के अभिप्राय से चाँपादे ने भी कविता का उत्तर कविता में इस प्रकार दिया :—

हळ तो धूना धोरियाँ, पन्थज गग्धाँ पव।
नराँ तुराँ अर बनफळाँ, पक्काँ पक्काँ साव॥[2]

कुछ तो उस समय की राजनैतिक झंझटों के कारण और कुछ अपने भाई महाराजा रायसिंह के लाभार्थ पृथ्वीराज को शाही दरबार में रहना पड़ता था पर अकबर की कूटनीति एवं उसके राजकीय आदर्शों के प्रति उनकी सहानुभूति लेशमात्र भी न थी और इस लिये जब भी मौक़ा मिलता

---

१ हे पृथ्वीराज! तुम्हारे सफेद बाल आ गये हैं और बहुत सी खोट लग गई। (और देखो!) तुम्हारी प्रेमिका मुँह फेरकर मस्त हाथी के समान खड़ी (हँस रही) है।

२ हल चलाने के लिये अभ्यस्त बैल अच्छे होते हैं और मार्ग चलने के लिये पुराने (वयस्क लोगों के) पाँव। इसी तरह आदमी, घोड़े और वन के फल पकने ही पर रस देते हैं।

अकबर को भी खरी खरी सुनाने से यह नहीं चूकते थे। उदाहरणार्थ, एक दिन भरी सभा में अकबर ने जब यह डींग मारी कि अब प्रताप भी हमारी वश्यता स्वीकार करने को तैयार है तब ऐसी निर्भीकता से इन्होंने उसके कथन का खंडन किया कि समस्त सभासद चकित, विभ्रान्त एवं भीत हो उठे। पृथ्वीराज बोले—"जहाँपनाह ! सागर मर्यादा, हिमालय गौरव और सूर्य तेज को भले ही छोड़ दें, परन्तु शरीर में बल, नसों में रक्त और हाथ में तलवार रहते तक प्रताप अपने प्रण को कदापि न छोड़ेंगे। आपकी अधीनता स्वीकार न करेंगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेवाड़ और भारत का ही क्या, समस्त संसार का राज्य भी यदि प्रताप के पाँवों तले रख दिया जाय तो वह उसे ठुकरा देंगे। स्वतन्त्रता के सामने प्रताप की दृष्टि में राज्य—सम्मान, राज्याधिकार और राज्य वैभव का कोई मूल्य एवं महत्त्व नहीं है।" अकबर पृथ्वीराज को अपने राज्य का प्रधान स्तम्भ समझता था, पर इस सिंहनाद ने उसके मन में सन्देह उत्पन्न कर दिया और सोचने लगा कि प्रताप से मिलकर पृथ्वीराज कहीं मेरे एकाङ्गी अधिकार तथा साम्राज्य को जर्जरित करने का उद्योग न करे। वस्तुतः बात थी भी ऐसी ही। क्योंकि राजस्थान में उस समय वीरों का अभाव न था, अभाव था हिन्दू संगठन का। और यदि प्रतापसिंह को कहीं पृथ्वीराज जैसा सच्चा, सुभट तथा स्वदेश—सेवी साथी मिल जाता तो कम से कम राजस्थान में तो ये अकबर के पाँव न जमने देते।

पृथ्वीराज के जीवन की एक और घटना राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है। कहते हैं कि एक दिन अकबर ने इनसे कहा कि "तुम्हारे तो कोई पीर वश में मालूम होता है, बताओ तुम्हारी मृत्यु कब और कहाँ होगी।" "मथुरा के विश्रान्त घाट पर और उस समय एक सफ़ेद कौआ प्रकट होगा"—पृथ्वीराज ने उत्तर दिया। बादशाह को विश्वास न हुआ और इस भविष्य वाणी को निर्मूल सिद्ध करने के लिये उसने पृथ्वीराज को किसी राजकार्य के बहाने से अटक पार भेज दिया।। इस घटना से कोई साढ़े पाँच महीने के बाद एक दिन एक भील चकवा-चकवी के एक जोड़े को जंगल से पकड़ कर बेचने के लिये दिल्ली के बाज़ार में लाया। पक्षियों को देखने के लिये आये हुए मनुष्यों की बाज़ार में भीड़ लग गई और उनमें से एक ने हंसी ही हंसी में उनसे पूछा—"तुम रात को कहाँ थे"? इस पर दोनों पक्षी सहसा बोल उठे—"इसी पिंजरे में"। पक्षियों को मानव भाषा में बोलते सुनकर लोगों को बड़ा अचंभा हुआ और उनमें से किसी

ने इस बात की खबर अकबर को भी दी। बादशाह ने फ़ौरन पिंजरा मंगवाकर पक्षियों को देखा और कहा कि भील ने तो दुश्मनी से बेचने के लिये इन्हें पकड़ा था पर ऐसे शत्रु पर तो करोड़ों मित्र भी न्योछावर हैं। नवाब खानखाना उस समय वहाँ उपस्थित थे। उक्त भाव को लेकर उन्होंने यह आधा दोहा बनाया—

सज्जन वारूं कोड़धां, या दुर्जन की भेंट।

बादशाह को यह उक्ति बहुत पसंद आई और खानखाना से कहा कि इसे पूरी करो। पर वे न कर सके। इसलिये पृथ्वीराज को बुलाने की आज्ञा हुई। बादशाह की आज्ञा पाकर पृथ्वीराज ठीक पंद्रहवें दिन मथुरा पहुँचे। मृत्यु की घड़ी आ पहुँची थी। अतएव उन्होंने बादशाह के नाम एक पत्र लिखा और विश्रान्त घाट पर दान-पुण्य कर प्राण छोड़े। सफ़ेद कौआ आया। बादशाह के कर्मचारी, जो उन्हें लेने गये थे, देखकर दंग रह गये। उन्होंने आँखों देखी सारी घटना जाकर बादशाह से कह सुनाई और वह पत्र भी दिया जिसमें पूरा दोहा इस प्रकार लिखा हुआ था—

सज्जन वारूं कोड़धां, या दुर्जन की भेंट।
रजनी का मेळा किया, वेह के अच्छर मेट॥[1]

यह घटना वि० सं० १६५७ में हुई थी।

पृथ्वीराज का साहित्यिक जीवन उनके राजनैतिक जीवन से कम महत्त्व-पूर्ण न था। डिंगल साहित्य को अनेकानेक कवियों ने समृद्धिशाली बनाया है, किन्तु डिंगल के शृंगार रस के कवियों में पृथ्वीराज का स्थान निश्चय ही उन सब से ऊंचा है। इनके रचे 'वेलि किसन रुकमणी री', 'दशरथ रावउत' 'बसदेरावउत' और 'गंगालहरी' नामक चार ग्रन्थ तथा बहुत से फुटकर गीत, दोहे, छप्पयादि मिले हैं। इनके सिवा इनके रचे दो ग्रन्थ और भी कहे जाते हैं—'प्रेमदीपिका' और 'श्रीकृष्ण रुक्मिणी चरित्र'। इन

---

१ इस दुर्जन के ऊपर करोड़ों सज्जन भी न्योछावर हैं, जिसने विधाता के लेख को मिटा कर (चकवा और चकवी का) रात में मिलाप करा दिया। (ऐसा माना जाता है कि चकवा-चकवी दिन में तो साथ साथ रहते हैं पर रात्रि में अलग हो जाते हैं। लेकिन भील ने दोनों को पकड़ कर पिंजड़े में बंद कर दिया जिससे उनका रात में भी संयोग हो गया)।

ग्रन्थों में 'वेलि किसन रुकमणी री' इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। यह एक खंड काव्य है जो ३०५ छन्दों में समाप्त हुआ है। इसमें श्रीकृष्ण के साथ रुक्मिण के विवाह की कथा का वर्णन है और भाव, भाषा, माधुर्य, ओज और विषय सभी दृष्टियों से अपने रंग ढंग का अप्रतिम है। हिन्दी में तो ऐसा प्रौढ़ और काव्यांगों से पूर्ण खंड काव्य अभी तक एक भी नहीं लिखा गया। इसकी भाषा बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एवं ललित है और कविता इतनी भावमयी, इतनी सरस और इतनी कलापूर्ण है कि पढ़ते ही मन मुग्ध हो जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि डिंगल वीर रस के लिये जितनी उपयुक्त है, उतनी शृंगार रस के लिये नहीं है। परन्तु यह उनकी भ्रान्ति है। पृथ्वीराज का यह ग्रन्थ इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि डिंगल में शृंगाररस की भी अत्युच्च, सुमधुर, प्रौढ़ और विशिष्ट रचना हो सकती है।

शृंगाररस के सिवा पृथ्वीराज ने वीर आदि अन्य रसों में भी बड़ी उत्तम कविता की है। इनके फुटकर गीत—दोहों में वीर रस की बड़ी भव्य व्यंजना हुई है और सच तो यह है कि इन्हीं के कारण इनका राजस्थान में इतना नाम भी है। हिन्दी के कीर्तिमान कवि भूषण के समान पृथ्वीराज भी राष्ट्रीय प्रगति के सच्चे प्रतिनिधि, उसके भक्त और समर्थक थे। इनकी कविता अपने युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करती है और उसमें तत्कालीन राष्ट्रीय भावना का बड़ी सुन्दरता से स्पष्टीकरण हुआ है। पृथ्वीराज की वीररसात्मक कविताएं बहुत भावपूर्ण, बहुत हृदयस्पर्शी तथा बहुत प्रौढ़ हैं और ओज गुण तो उनमें इतना पाया जाता है कि उनके पढ़ने से कायर से कायर के हृदय में भी जोश उमड़ आता है। प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टाड ने पृथ्वीराज की कविता में दस हज़ार घोड़ों का बल बतलाया है, जो अक्षरशः ठीक है।

आगे हम पृथ्वीराज की वीररस की कविता के थोड़े से नमूने उद्धृत करते हैं :—

(१)

दोहे

धर बाँकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणां नरिंदां घेरियो, रहे गिरंदाँ राण ॥१॥

१—धर = धरा, भूमि। पाधरा = अनुकूल। न मूकै = छोड़ता नहीं।

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझके, जाण सिराणैं साँप ॥२॥
अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सजळ।
मेवाड़ो तिण माँह, पोयण फूल प्रतापसी ॥३॥
पातळ पाघ प्रमाण, साँची साँगाहर तणी।
रही सदा लग राण, अकबर सूं ऊभी अणी ॥४॥

माण = मान। घणां = बहुत, अनेक। घेरियो = घिरा हुआ। गिरंदाँ = पहाड़ों में। बाँकी = विकट।

भावार्थ—जिसकी भूमि अत्यन्त विकट है और दिन अनुकूल हैं; जो वीर अपने मान को नहीं छोड़ता, वह महाराणा (प्रताप) अनेक राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ों में निवास करता है।

२—एहड़ा = ऐसे। जेहड़ा = जैसा। ओझके = चौंक पड़ता है। जण = जन्म दे।

भावार्थ—हे माता! ऐसे पुत्रों को जन्म दे जैसा राणा प्रताप है, जिसको अकबर सिरहाने का साँप समझ कर सोता हुआ चौंक पड़ता है।

३—समद = समुद्र। सूरापण = शौर्य, वीरता। तिण माँह = उसमें। पोयण = कमल।

भावार्थ—अकबर अथाह समुद्र है जिसमें वीरतारूपी जल भरा हुआ है। परन्तु मेवाड़ का राणा प्रताप उसमें कमल के फूल के समान है। अर्थात् जिस तरह कमल पर जल का कोई असर नहीं पड़ता उसी तरह प्रताप पर भी अकबर की वीरता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

४—पातळ = प्रतापसिंह। पाघ = पगड़ी, प्रमाण = निश्चय ही, वास्तव में। तणी = की। अणी = आगे, सामने। ऊभी = अनम्र, सीधी खड़ी है।

भावार्थ—महाराणा सांगा के पोते प्रतापसिंह की पगड़ी ही वास्तव में सच्ची है जो अकबर के सामने सदैव अनम्र हो कर खड़ी रही अर्थात् प्रताप ने अकबर के आगे अपना मस्तक नहीं झुकाया।

अइरे अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सहराजवी ॥५॥
सह गावड़ियो साथ, एकण बाड़े वाड़ियो।
राण न मानी नाथ, ताँडे साँड प्रतापसी ॥६॥
पहु गोधळिया पास, आळूधा अकबर तणी।
राणो पिमे न रास, प्रघळो साँड प्रतापसी ॥७॥
वाही राण प्रतापसी, वरछी लचपच्चांह।
जाणक नागण नीसरी, मुंह भरियो बच्चांह ॥८॥
पातळ घड़ पतसाहरी, एम विधूंसी आण।
जाण चढ़ी कर बंदरां, पोथी वेद पुराण ॥९॥

५—तुहालो = तेरा। सह = सब। राजवी = राजा लोग।

भावार्थ—हे अकबर! तेरा तेज अद्भुत है जिसके सामने महाराणा प्रताप को छोड़ कर सब राजा लोग झुक गये।

६—गावड़ियो = गायरूपी। एकण = एक। वाड़ियो = डाल दिया; इकट्ठा कर लिया। ताँडै = डाँढता है, गरजना करता है। नाथ = नाक का बंधन।

भावार्थ—हे अकबर! तूने गायरूपी सब राजाओं को एक बाड़े में इकट्ठा कर लिया; पर साँडरूपी राणा प्रताप तेरी नाथ को न मान कर गरज रहा है।

७—गोधळिया = बैलरूपी। पास = पाश, फाँस। आळूधा = आ गये = बँध गये। पिमै न = सहन नहीं करता। रास = रस्सी। प्रघळो = प्रबल, जबरदस्त।

भावार्थ—अन्य सब छोटे बैलरूपी राजा अकबर के पाश में बँध गये। पर प्रतापसिंहरूपी बलवान साँड उसकी रस्सी को सहन नहीं करता।

८—लचपच्चांह = लचकती हुई। जाणक = मानो। नागण = सर्पिणी। नीसरी = निकली। वाही = चलाई।

भावार्थ—महाराणा प्रताप ने लचकती हुई बरछी चलाई; वह (शत्रु को भेद कर) इस तरह बाहर आई मानो कोई सर्पिणी अपने बच्चों को मुँह में लेकर निकली हो।

९—घड़ = सेना। एम = इस तरह विधूंसी = नष्ट कर दी। जाण = जैसे, मानो।

चोथो चीतोड़ाह, वाँटो वाजंती तणो ।
माथे मेवाड़ाह, थारे राण प्रतापसी ॥१०॥
पातळ जो पतसाह, बोले मुख हूंता वयण ।
मिहर पछम दिस मांह, ऊगे कासप राव उत ॥११॥
पटकूं मूंछां पाण, के पटकूं निज तन करद ।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली वात इक ॥१२॥

भावार्थ—महाराणा प्रताप ने वादशाह अकबर की फ़ौज को इस तरह नष्ट कर दिया जिस तरह वंदर के हाथ वेद-पुराण की पुस्तक आने पर वह उसे फाड़ फेंकता है।

१०—चोथो = चतुर्थ। वाँटो = भाग । वाजंती तणो = बजती हुई घड़ियाल का। चीतोड़ाह = चितौड़ के स्वामी। माथे = मस्तक पर। थारे = तेरे। चोथो वाँटो वाजंती तणो = वजती हुई घड़ी का चौथा हिस्सा अर्थात् पाव घड़ी। पाघड़ी। पगड़ी।

भावार्थ—हे चित्तौड़ के स्वामी प्रताप! बजती हुई घड़ी का चतुर्थभाग (पाव घड़ी अर्थात् पावड़ी=पगड़ी) पगड़ी तेरे ही सिर पर है। (कवि का अभिप्राय यह है कि प्रताप को छोड़ दूसरे सब राजाओं ने अपनी पगड़ी अकबर के पाँवों में डाल दी है अर्थात् सब उसके पाँवों में झुकने लग गये हैं)।

११—हूंता = से। वयण = वचन, शब्द।

भावार्थ—प्रतापसिंह यदि अपने मुँह से अकबर को वादशाह कहें, तो कश्यप के पुत्र सूर्य पश्चिम दिशा में उगने लग जायें। अर्थात् जिस तरह सूर्य का पश्चिम में उगना असंभव है उसी तरह प्रताप के मुँह से भी 'वादशाह' शब्द का निकलना असंभव है।

१२—करद = तलवार। दीवाण—मेवाड़ के महाराणा एकलिंग जी के दीवान कहलाते हैं। मेवाड़-राज्य एकलिंगजी का है, महाराणा उनके दीवान हैं।

भावार्थ—हे एकलिंग के दीवान महाराणा! मैं अपनी मूँछों पर ताव दूँ या अपने शरीर को तलवार से काट दूँ, इन दो में से एक बात लिख दीजिये।

वाही राण प्रतापसी, वगतर में वरछीह।
जाणक भींगर जाळमें, मुंह काढ्यो मच्छीह ॥१३॥
चम्पो चीतोड़ाह, पोरस तणों प्रतापसी।
सोरभ अकबर साह, अळियळ आभड़ियो नहीं ॥१४॥

(२)

गीत

नर जेथ निमाणा निलजी नारी,
अकबर गाहक वट अवट।
चोहटै तिण जायर चीतोड़ो,
वेचै किम रजपूतवट ॥१॥

१३—वाही = चलाई । वगतर = (फा० वख़्तर) लोहे के जाल का बना हुआ कवच।

भावार्थ—महाराणा प्रताप ने बरछी चलाई; वह कवच को फोड़ कर इस तरह बाहर निकली जिस तरह छोटी मच्छी जाल में से मुँह निकालती है।

१४—पोरस = पौरुष, पराक्रम । तणों = का । सोरभ = पराग, सुगंध । अळियळ = भ्रमर । आभड़ियो नहीं = स्पर्श नहीं किया, पास नहीं आया।

भावार्थ—चित्तौड़ के स्वामी प्रताप का पराक्रम चंपे का वृक्ष है जिसके सौरभ पर अकबररूपी भ्रमर नहीं आया। प्रसिद्ध है कि भ्रमर सब फूलों पर मँडराता और उनका रस लेता है पर चंपे के फूल के पास ही नहीं फटकता। किसी कवि ने कहा भी है :—

चंपा तुव में तीन गुण, रूप, रंग अरु वास।
अवगुण तुव में कौन है, भौंर न आवै पास।

१—जेथ = जहाँ । निमाणा = मानहीन । निलजी = निर्लज्ज । वाट = (हिं० वाट) मार्ग । अवट = अभेद्य, अगम, बाँका-टेढ़ा, घुमावदार। चोहटै = बाजार । तिण = उस। जायर = जाकर । चीतोड़ो = चित्तौड़ का स्वामी । किम = कैसे । रजपूतवट = रजपूती, क्षात्र धर्म।

रोजायतां तणैं नवरोजै,
जेथ मुसाणा जणो जण ।
हींदू नाथ दिलीचे हाटे,
पतो न खरचै खत्रीपण ॥२॥
परपंच लाज दीठ नह व्यापण,
खोटो लाभ अलाभ खरो ।
रज बेचवा न आवै राणो,
हाटे मीर हमीरहरो ॥३॥
पेखे आप तणा पुरसोतम,
रह अणियाल तणैं बळ राण ।
खत्र बेचिया अनेक खत्रियां,
खत्रवट थिर राखी खुम्माण ॥४॥

भावार्थ—जहाँ पर पुरुषों के मान और स्त्रियों के सतीत्व का अपहरण किया जाता है, जहाँ के मार्ग टेढ़े-मेढ़े हैं और जहाँ अकबर जैसा खरीदार है उस बाज़ार में जाकर चित्तौड़ का स्वामी (प्रताप) रजपूती को कैसे बेचेगा ?

२—रोजायतां तणैं = मुसलमानों के । नवरोजै = नौरोज़ के उत्सव में । मुसाणा जणो जण = प्रत्येक व्यक्ति लुट गया । दिलीचे हाटे = दिल्ली के बाज़ार में । पतो = प्रतापसिंह । न खरचै = ख़र्च नहीं करता । खत्रीपण = क्षत्रियत्व, रजपूती ।

भावार्थ—मुसलमानों के नौरोज़ में प्रत्येक व्यक्ति लुट गया । परन्तु दिल्ली के उस बाज़ार में हिन्दू-पति महाराणा प्रतापसिंह अपने क्षत्रियपन को ख़र्च नहीं करता (नहीं बेचता) ।

३—परपंच = प्रपंच । रज = रजपूती । अलाभ = हानि, घाटा ।

भावार्थ— हंमीर का वंशज (राणा प्रताप) प्रपंची अकबर की लज्जाजनक दृष्टि अपने ऊपर नहीं पड़ने देता और पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा तथा अलाभ (हानि) को अच्छा समझ कर बादशाही दुकानों पर रजपूती बेचने के लिये नहीं आता ।

४—आप तणा = अपने । पुरसोतम = पुरखाओं के उत्तम (कार्य) ।

जासी हाट बात रहसी जग,
अकबर ठग जासी एकार।
हैं राख्यो खत्री ध्रम राणैं,
सारा ले बरतो संसार॥५॥

(२)

गीत

ऊगां दन समैं करै आपाड़ा,
चौरंग भुवण हसत अणचूक।
रोदां तणा रगत सूं राणा,
रंगियो रहै तुहाळो रूक॥१॥
मोकळहरा महाजुध मचतै,
बचतां सर नत्रीठ वहै।

अणियाल तणैं=भाले के। खत्रवट=क्षत्रिय धर्म। खत्र=क्षत्रिय। थिर=स्थिर।

भावार्थ—अपने पूर्वजों के उत्तम कर्त्तव्य को देखते हुए आप (महाराणा प्रताप) ने भाले के बल से क्षत्रिय धर्म को अचल रखा जब कि अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को बेच डाला।

५—भावार्थ—अकबररूपी ठग एक दिन इस संसार से चला जायगा। और उसका यह बाजार भी उठ जायगा। परंतु संसार में यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रियों के धर्म में रह कर उस धर्म को केवल प्रतापसिंह ने ही निभाया।

१—ऊगां दन=दिन उगते ही। समैं=समय। आपाड़ा=युद्ध। चौरंग भुवण=युद्ध-भूमि में। हसत=(सं० हस्त) हाथ। अणचूक=अचूक। रोदां तणा=मुसलमानों के। रगत=रक्त। तुहाळो=तेरा। रूक=खड्ग।

भावार्थ—हे राणा (प्रताप)! तेरे न चूकने वाले हाथ दिन उगते समय ही रण-भूमि में युद्ध करने लगते हैं और तेरा खड्ग मुसलमानों के रक्त से रंगा ही रहता है।

पातळ तृग्क तणो पडियाळग,
रुधर चरचियो सदा रहै ॥२॥
पित कारणै करै नित पळवट,
पेटै कटक तणा पुरसांण ।
प्रसणां सोण अहोनस पातळ,
पग सावरत रहै खूमांण ॥३॥
ऊगां सूर समो ऊदावत,
वढै वसू छळचोळ विरोळ ।
चळअळ अरी तणैं चीतोड़ा,
चंद्रप्रहास रहै नत चोळ ॥४॥

२—मोकळहरा = मोकल के वंशज (प्रताप)। नत्रीठ वहै = बड़े वेग से चलता है । पडियाळग = खड्ग । चरचियो = लेप किया हुआ ।

भावार्थ—हे मोकल के वंशज ! महायुद्ध मचते समय तेरा खड्ग भागते हुए शत्रुओं के सिरों पर बड़े वेग से चलता है। हे प्रताप ! तेरा खड्ग सदा रुधिर से चर्चित रहता है ।

३—पित = पृथ्वी । पळवट = दुष्टता का, दुष्टों का । खेटै = संहार करता है। पुरसांण = यवन । प्रसणां = शत्रु । सोण = रक्त । पातळ = प्रतापसिंह । सावरत = लाल । अहोनस = रात-दिन ।

भावार्थ—हे खुमाण के वंशज प्रातप ! तू पृथ्वी के लिये दुष्टों का संहार करता है और यवनों की सेनाओं को नष्ट करता है। तेरा खड्ग रात-दिन यवनों के खून से लाल रहता है ।

४—ऊदावत = उदयसिंह का पुत्र । वसू = पृथ्वी । नत = सदैव । चोळ = लाल ।

भावार्थ—हे उदयसिंह के पुत्र ! सूर्योदय के समय से ही तू पृथ्वी के लिये युद्ध करना प्रारंभ करता है। हे चित्तौड़ के स्वामी ! तेरा चन्द्रहास (खड्ग) शत्रुओं के रक्त से सदा लालवर्ण रहता है ।

की ओर देखने लगा। दुरसाजी बादशाह की विचार-वेदना को ताड़ गये और उसकी मुखाकृति से उसके दिल के भाव समझ कर उन्होंने यह छप्पय कहा:—

अस लेगो अणदाग, पाघ लेगो अणनामी।
गो आड़ा गवड़ाय, जिको वहतो धुर वामी॥
नवरोजे नह गयो, न गौ आतसां नवल्ली।
न गौ झरोखाँ हेठ, जेथ दुनियांण दहल्ली॥
गहलोत राण जीती गयो, दसण मूंद रसणा डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत साह प्रतापसी॥[१]

इसे सुनकर दरबारियों ने अनुमान किया कि बादशाह दुरसाजी पर अवश्य क्रुद्ध होगा। परन्तु उसने तो उल्टा उन्हें इनाम दिया और कहा कि इसी ने मेरे भाव को ठीक ठीक समझा है।

दुरसाजी ने दो विवाह किये थे जिनसे इनके चार पुत्र हुए—भारमल जी, जगमलजी, सादूलजी और किसनाजी। वृद्धावस्था में अपने सब से बड़े पुत्र भारमल जी के साथ इनकी कुछ खटपट हो गई थी इसलिये ये अपने सब से छोटे पुत्र किसनाजी के साथ पाँचेटिया (मारवाड़) में रहते थे। यहीं पर वि० सं० १७१२ में १२७ वर्ष की अवस्था में इनका स्वर्गवास हुआ। पाँचेटिया में जिस स्थान पर इनका अग्नि-संस्कार हुआ, वहाँ पर एक मंदिर अभी तक बना हुआ है। आबू के अचलेश्वर महादेव के मन्दिर में शिवजी की प्रतिमा के सामने इनकी भी सर्वधात की एक मूर्ति बनी हुई है, जो इनकी देवोपम प्रतिष्ठा का परिचय देती है।

दुरसाजी बड़े भाग्यशाली कवि थे। कविता के नाम से जितना धन, जितना यश और जितना सम्मान इनको मिला, उतना राजस्थान के किसी भी दूसरे कवि को आज तक नहीं मिला। इस दृष्टि से इनका महत्व

---

१ आशय—हे गुहिलोत राणा प्रतापसिंह! तेरी मृत्यु पर बादशाह ने दाँतों के बीच जीभ दबाई और निश्वास के साथ आँसू टपकाये; क्योंकि तूने अपने घोड़े को दाग़ नहीं लगने दिया, अपनी पगड़ी को किसी दूसरे के सामने नहीं झुकाया, तू अपने यश के गीत गवा गया, तू अपने राज्य के धुरे को बाँयें कंधे से चलाता रहा, नौरोज़ में नहीं गया, न शाही डेरों में गया, कभी शाही झरोखे के नीचे खड़ा न रहा और तेरा रोब दुनियाँ पर ग़ालिब था; अतएव सब तरह से विजयी रहा।

हिन्दी के महाकवि भूषण से भी बहुत बढ़कर है। मेवाड़ के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कवि राजा श्यामलदास ने अपने प्रख्यात ग्रंथ वीरविनोद में लिखा है कि सम्राट अकबर ने इनको छह करोड़ रुपया दिया था। इसके सिवा बीकानेर के महाराजा रायसिंह, जयपुर के महाराजा मानसिंह और सिरोही के राव सुरताण ने इन्हें एक एक क्रोड़ पसाव दिया था और छोटे मोटे गाँव और लाख पसाव तो इन्हें कई राजाओं की तरफ़ से मिले थे। इतना ही नहीं अकबर के दरबार में इनको बैठक मिली हुई थी, जिसके लिये उस समय के बड़े बड़े राजा-महाराजा लालायित रहते और तरसते थे।

दुरसाजी बड़े प्रतिभावान कवि थे और बहुत लम्बी आयु का उपभोग कर स्वर्गवासी हुए थे। अतएव संभावना तो यही है कि इन्होंने प्रचुर परिमाण में लिखा होगा परन्तु अभी तक इनकी बहुत कम कविताएँ उपलब्ध हुई हैं। इनके रचे 'विरुद छहत्तरी' तथा 'कुमार श्री अजाजी नी सुचर मोरी नी गजगत' नामक दो छोटे छोटे ग्रंथ और थोड़े से फुटकर गीत छप्पय आदि प्राप्त हुए हैं और इन्हीं पर इनकी उत्तुंग ख्याति अवलंबित है। इनकी कविताओं का राजस्थान के काव्य-प्रेमियों में बड़ा आदर है और चारणों में तो शायद ही कोई ऐसा हतभाग्य पुरुष मिलेगा जिसे इनकी दो-चार कविताएं मुखाग्र न हों। दुरसाजी हिन्दू-धर्म हिन्दू-जाति और हिन्दू-संस्कृति के अनन्य उपासक थे। अपनी कविता में इन्होंने तत्कालीन हिन्दू-समाज की विपन्नावस्था और अकबर की कूटनीति का बड़ा ही सजीव, वीर-दर्प-पूर्ण और चुभता हुआ वर्णन किया है। कहने को तो इनकी 'विरुद छहत्तरी' में महाराणा प्रताप के यश का वर्णन है, परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से उसके अंतराल में हमें मुग़ल शासन के विरुद्ध होने वाली क्रान्ति की मूलभूत उस गुप्त और सूक्ष्म चिनगारी का आभास मिलता है जो शनैः शनैः बढ़ती हुई औरंगज़ेब के समय में अति विकराल अग्नि-ज्वाला का रूप धारण कर लेती है और अंत में विशाल मुग़ल साम्राज्य को भस्मीभूत कर उसे धूल में मिला देती है।

दुरसाजी की कविता के कुछ नमूने हम आगे प्रस्तुत करते हैं :—

दोहे

अकबर गरब न आँण, हींदू सह चाकर हुवा।
दीठो कोई दीवाण, करतो लटका कटहड़े ॥१॥

१—गरब न आँण = गर्व मत कर। सह = सब। दीवाण = महाराणा। दीठो = देखा है।

अकबर कीना आद, हींदू नृप हाजर हुवां।
मेदपाट मरजाद, पग लागो न प्रतापसी ॥२॥

कदे न नामे कंध, अकबर ढिग आवै न ओ।
सूरज वंस संबंध, पाळै राण प्रतापसी ॥३॥

अकबर पथर अनेक, कै भूपत भेळा किया।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥४॥

सांगो धरम सहाय, बाबर सूं भिड़ियो विहस।
अकबर कदमां आय, पड़ै न राण प्रतापसी ॥५॥

भावार्थ—हे अकबर! सब हिन्दू तेरे चाकर हो गये, इस बात का अभिमान मत कर। क्या कभी किसी ने महाराणा (प्रताप) को शाही कटहरे के पास झुक झुक कर सलाम करते देखा है?

२—कीना आद = याद किया। मेदपाट = मेवाड़।

भावार्थ—अकबर ने याद किया तो सब हिन्दू राजा हाजिर हो गये। लेकिन मेवाड़ की मर्यादा को रखने वाला राणा प्रताप उसके पाँवों में नहीं पड़ा।

३—कदे = कभी। ओ = यह।

भावार्थ—यह राणा न तो कभी अकबर के पास आता है और न मस्तक ही झुकाता है। प्रतापसिंह सूर्यवंश के संबंध का पालन करता है। (सूर्य किसी के भी सामने नहीं झुकता। प्रताप सूर्य्य का वंशज है, इसलिये अपनी वंश मर्य्यादा को रखने के लिये वह भी किसी के सामने नत मस्तक नहीं होता।)

४—भेळा किया = इकट्ठा किया। हेक = एक।

भावार्थ—अकबर ने राजारूपी अनेक पत्थर इकट्ठे किये, किन्तु पारसरूपी एक राणा प्रताप उसके हाथ नहीं आया।

५—भिड़ियो = भिड़ गया, लड़ा। विहस = खूब, जोरों से। कदमां = क़दमों में।

भावार्थ—पहले महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) धर्म की सहायता के लिये बाबर से खूब लड़ा था और अब राणा प्रताप अकबर के पैरों में नहीं पड़ता।

सुख हित स्याळ समाज, हींदू अकबर बस हुवा।
रोसीलो मृगराज, पजै न राण प्रतापसी ॥६॥
है अकबर घर हाण, डाण अहे नीची दिसट।
तजे न ऊंची ताण, पोरस राण प्रतापसी ॥७॥
जाणै अकबर जोर, तो पिण ताणै तोर तिड़ै
आ बलाय है और, पिसणां षोर प्रतापसी ॥८॥
अकबर हिये उचाट, रात दिवस लागी रहै।
रजवट बट समराट, पाटप राण प्रतापसी ॥९॥

६—स्याळ = गीदड़, शृगाल। रोसीलो = क्रोधी। पजै न = अधीन नहीं होता, परास्त नहीं होता।

भावार्थ—सुख-भोग के लिये अन्य हिन्दू राजा गीदड़ों की तरह अकबर के वश में हो गये; पर क्रोधी सिंह के समान राणा प्रताप उसकी अधीनता स्वीकार नहीं करता।

७—हाण = हानि। डाण = खिराज, जुरमाना, अर्थ-दंड। दिसट = (सं० दृष्टि) निगाह, नज़र। ऊँची ताण = उच्चाशय। पोरस = पुरुषार्थ, पौरुष।

भावार्थ—अकबर के घर में हानि है जिससे खिराज लेते हुए भी उसकी दृष्टि नीची ही रहती है। क्योंकि उच्चाशय राणा प्रताप अपने पुरुषार्थ को नहीं छोड़ता।

८—जाणै = जानता है। तो पिण = तो भी। ताणै = खींचता है। तिड़ = पक्ष। पिसणां = शत्रुओं को। पिसण = शत्रु। षोर = (फा० ख़्वार) खाने वाली।

भावार्थ—अकबर अपने बल को जानता है तो भी जोश से अपने पक्ष को खींचता है। पर दुश्मन को खा जानेवाली यह आफ़त, प्रतापसिंह दूसरी ही (चीज़) है।

९—उचाट = उच्चाटन, खटका। रजवट = रजपूती। बट = जोर, मार्ग। समराट = सम्राट्। पाटप—पाटवी, सब से बड़ा।

भावार्थ—अकबर के मन में रात-दिन यह खटका बना रहता है कि रजपूती के ज़ोर अथवा मार्ग को रखनेवाले सम्राटों में प्रताप ही सब से बड़ा है।

अकबर समंद अथाह, तिहं डूबा हींदू तुरक।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी ॥१०॥
अकबरिये इकबार, दागळ की सारी दुनी।
अणदागळ असवार, रहियो राण प्रतापसी ॥११॥
अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हींदू अवर।
जागै जगदातार, पोहरै राण प्रतापसी ॥१२॥
अकबर कनै अनेक, नम नम नीसरिया नृपांत।
अनमी रहियो एक, पहुवी राण प्रतापसी ॥१३॥

१०—पोयण = कमल।

भावार्थ—अकबर अथाह समुद्र के समान है जिसमें हिन्दू और मुसलमान सब डूब गये। परन्तु मेवाड़ का महाराणा प्रतापसिंह कमल के फूल के समान उसके ऊपर ही (तैर रहा) है।

११—दुनी = दुनिया। दागल = दाग़ से युक्त। अपने अधीनस्थ तमाम राजाओं, अमीरों आदि के घोड़ों की पीठ पर दाग़ लगाने की प्रथा अकबर ने इसलिये प्रचलित कर रखी थी कि जिससे घोड़े को देखते ही यह ज्ञात हो जाय कि अमुक घोड़ा बादशाही सेवक का है और अमुक नहीं है।

भावार्थ—अकबर ने एक बार में ही सारी दुनिया के दाग़ लगा दिया पर एक राणा प्रताप ही बिना दाग़वाले घोड़े पर सवार होता है।

१२—ऊँघण = ऊँघने लग गये। अवर = अन्य, दूसरे पोहरै = पहरे पर।

भावार्थ—अकबर घोर अंधकार के समान है जिसमें अन्य सब हिन्दू ऊँघने लग गये हैं। लेकिन जगत का दाता प्रतापसिंह पहरे पर जग रहा है।

१३—कनै = पास। नीसरिया = निकल गये। अनमी = अनम्र। पहुवी = पृथ्वी।

भावार्थ—अकबर के पास सब राजा मस्तक झुका कर निकल गये। पृथ्वी पर एक महाराणा प्रताप ही अनम्र रहा गया है।

थिर नृप हिन्दुसथान, लातरगा मग लोभ लग।
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी ॥१४॥
सेलां अणी सनान, धारा तीरथ में धसे।
देण धरम रणदान, पुरट सरीर प्रतापसी ॥१५॥
ढिग अकबर दळ ढाण, अग अग झगड़ै आथड़ै।
मग मग पाड़ै माण, पग पग राण प्रतापसी ॥१६॥
चीत मरण रण चाय, अकबर आधीनी बिना।
पराधीन दुख पाय, पुनि जीवै न प्रतापसी ॥१७॥

१४—लातरगा = थक गये, पथ-भ्रष्ट हो गये। मग लोभ लग = लोभ के मार्ग में लग कर, लोभ के वशीभूत होकर। थिर = स्थिर, अडिग।

भावार्थ—कभी भी न डिगनेवाले हिन्दोस्तान के राजा लोग लोभ के मार्ग में पड़ कर थक गये। परन्तु राणा प्रताप पृथ्वी को माता मान कर पूजता है।

१५—सेलां = भालों की। अणी = नोक। सनान = स्नान। धारा तीरथ = तलवाररूपी तीर्थ, तलवार के घाट। धँसे = प्रवेश कर के। पुरट = सोना।

भावार्थ—हे राणा प्रताप! भालों की नोकों में स्नान करते हुए और तलवार की धारारूपी तीर्थ में प्रवेश कर के स्वधर्म के लिये स्वर्ण-रूपी शरीर का दान देनेवाला एक तू ही है।

१६—अग = पर्वत। आथड़ै = युद्ध करता है। पाड़ै माण = मान-भंजन कर देता है।

भावार्थ—अकबर के पास का सैन्य-समूह पर्वत-पर्वत पर लड़ता-झगड़ता है। परन्तु महाराणा प्रताप प्रत्येक मार्ग में पग-पग पर उसके मान का भंजन करता है।

१७—चाय = इच्छा।

भावार्थ—महाराणा प्रताप की एक मात्र इच्छा यही है कि युद्ध में मर जाना पर अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं करना। अतः पराधीनता के दुख को सहकर प्रताप जीवित रहना नहीं चाहता।

गोहिळ कुळ धन गाढ़, लेवण अकबर लालच ।
कौड़ी दै नह काढ़, पणधर राण प्रतापसी ॥१८
अकबर दळ अप्रमाण, उदैनयर घेरे अनय ।
पागां बळ षूमाण, साहां दळण प्रतापसी ॥१९॥
अकबर तड़फै आप, फतै करण च्यारूं तरफ ।
पण राणो परताप, हाथ न चढ़ै हमीरहर ॥२०॥
अकबर किला अनेक, फतै किया निज फौज सूं ।
अकल चलै नह एक, पाधर लड़ै प्रतापसी ॥२१
कळपै अकबर काय; गुण पूंगीधर गोड़िया ।
मिणधर छाबड़ मांय, पड़ै न राण प्रतापसी ॥२२॥

न गाढ़ = गाढ़ी कमाई, भारी धन । काढ़ = निकाल कर । पणधर = प्रण रखने वाला । लेवण = लेने के लिये ।

भावार्थ—गुहिलोत वंश की गाढ़ी कमाई को ले लेने के लिये अकबर बहुत लालच कर रहा है । परन्तु दृढ़ प्रतिज्ञ राणा प्रताप एक कौड़ी भी निकाल कर उसे नहीं देता ।

१९—उदैनयर = उदयपुर, मेवाड़ की वर्तमान राजधानी । अनय = अन्याय पागां बल = खड्ग के बल से । षूमाण = खुमाण का वंशधर । दळण = दलनेवाला, पीसनेवाला ।

भावार्थ—अकबर की असंख्य सेना ने उदयपुर को अपनी अनीति से घेर लिया है । लेकिन खुमाण का वंशज प्रतापसिंह अपने खड्ग के बल से शाही सेना को पीस डालता है ।

२०—पण = लेकिन । हमीरहर = हंमीरसिंह का वंशज ।

भावार्थ—चारों तरफ फतह प्राप्त करने के लिये अकबर स्वयं तड़फ रहा है । लेकिन हंमीरसिंह का वंशज राणा प्रताप उसके हाथ नहीं चढ़ता (आता) ।

२१—पाधर = सम भूमि; सीधा । नह = नहीं ।

भावार्थ—अकबर ने अपनी फ़ौज के बल से अनेक क़िले फतह कर लिये । परन्तु प्रतापसिंह सम भूमि पर लड़ता है; इसलिये उसकी एक भी नहीं चलती ।

२२—कळपै = कलपता है, खीजता है । काय = शरीर । पूंगीधर = पूँगीवाला । गोड़िया = सँपेरा । मिणधर = मणिधर = मणि-धारी सर्प । मांय = में । छाबड़ = छबड़ी, टोकरी, डलिया ।

महि दाधण मेवाड़, राड़ धाड़ अकबर रचै।
विषै विषायत वाड़, प्रथुळ पहाड़ प्रतापसी ॥२३॥
बंधियो अकबर वैर, रसत गैर रोकी रिपू ।
कंद मूळ फळ कैर, पावै राण प्रतापसी ॥२४॥
भागै सागै भाम, अम्रत लागै ऊंमरा ।
अकबर तळ आराम, पेखै जहर प्रतासी ॥२५॥
अकबर मैगळ अच्छ, मांझळ दळ धूमै मसत ।
पंचानन पळ भच्छ, पटकै छड़ा प्रतापसी ॥२६॥

भावार्थ—पूँगीवाला चतुर सँपेरा अकबर बहुत छटपटा रहा है, पर मणिधारी साँपरूपी राणा प्रताप उसकी छगड़ी में नहीं आता ।

२३—दाधण = दबाने के लिये, हड़पने के लिये । राड़ = लड़ाई । धाड़ = धावा । विषै विषायत = हानि सहन करनेवाला, कष्ट-सहिष्णु । वाड़ = काँटों की दीवार, रोक । प्रथुळ = बड़े ।

भावार्थ—मेवाड़ की भूमि को हड़पने के लिये अकबर लड़ाई और धावे करता है । परन्तु उसके (मेवाड़ के) कष्ट सहिष्णु राणा प्रताप रूपी बड़े पहाड़ की रोक लगी हुई है ।

२४—रसत = रसद, फौज के लिये खाने-पीने आदि का सामान । गैर = घेर कर ।

भावार्थ—अकबर से वैर बँध गया; इसलिए शत्रु ने घेर कर चारों ओर से रसद रोक दी । फिर भी प्रताप को कंद, मूल, फल, कैर आदि तो खाने को मिल ही जाते हैं ।

२५—सागै = साथ । भाम = स्त्री । ऊंमरा = गूलरके फल । तळ = नीचे, अधीनता में । पेखै = समझते हैं, मानते हैं ।

भावार्थ—महाराणा अपनी स्त्री के सहित भागते फिरते हैं और गूलर के फल उनको अमृत के समान मीठे लगते हैं । परन्तु अकबर की अधीनता में सुखपूर्वक रहने को वे जहर समझते हैं ।

२६—मैंगळ = हाथी । अच्छ = श्रेष्ठ । मांझळ = मध्य । मसत = मस्त । पंचानन = सिंह । पळ भच्छ = मांसाहारी । छड़ा = पंजा ।

घट सूं ओघट घाट, घसियो अकबरिये घणो।
इळ चंनण उप्रवाट, परमळ उटी प्रतापसी ॥२७॥
अकबर जतन अपार, रात दिवस रोकण करै।
पूगी समंदाँ पार, पंगी राण प्रतापसी ॥२८॥
वड़ी विपत सह वीर, वड़ी कीत पाटी वसू।
धरम धुरंधर धीर, पौरस धिनो प्रतापसी ॥२९॥
वसुधा किया विख्यात, समरथ कुळ सीसोदिया।
राणा जसरी रात, प्रगट्यो भलां प्रतापसी ॥३०॥

भावार्थ--अकबर श्रेष्ठ हाथी के समान मस्त होकर सं के बीच में घूमता है। लेकिन मांसाहारी सिंह के सम महाराणा प्रताप उसे पंजा मार कर गिरा देता है।

२७—घट = उचित। ओघट = अनुचित। घाट = ढंग। घसियो = घिसा, दुख दिया। इळ = पृथ्वी। घणो = बहुत। चंनण = चंदन। परमळ = परिमल, सुगंध।

भावार्थ—अकबर ने उचित और अनुचित ढंग से (प्रताप को) बहुत दुख दिया। परन्तु इससे पृथ्वी पर प्रतापसिंह-रूपी चंदन से तो सुगंध ही प्रकट हुई अर्थात् उनकी कीर्ति ही फैली।

२८—पंगी = कीर्ति। पूगी = पहुँच गई।

भावार्थ--प्रतापसिंह की कीर्ति को रोकने के लिये अकबर रात-दिन अपार यत्न करता रहा है; फिर भी उसकी कीर्ति समुद्रों के पार पहुँच गई।

२९—कीत = कीर्ति। पाटी = प्राप्त की। धिनो = धन्य है। वसू = पृथ्वी।

भावार्थ—हे वीर प्रतापसिंह! तूने बड़ी बड़ी विपत्तियों को सहन करके भी पृथ्वी पर बड़ी कीर्ति उपार्जित की है। हे धर्मधुरीण धीर! तेरा पौरुष धन्य है।

३०—भावार्थ—हे महाराणा प्रताप! तुमने यश की रात्रि में भला ही जन्म लिया कि जिससे पृथ्वी पर सामर्थ्यवान् सीसोदिया वंश का नाम प्रख्यात हुआ।

जिण रो जस जग मांहि, जिणरो जग धिन जीवणो।
नेड़ो अपजस नाँहि, पृणधर धिनो प्रतापसी ॥३१॥
अजरामर धन एह, जस रह जावे जगत में।
दुख सुख दोनू देह, सुपन समान प्रतापसी ॥३२॥
अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा।
पुनरासी परताप, सुजस न जासी सूरमा ॥३३॥
मन री मन रै मांहि, अकबर रै रहगी इकस।
नरवर करिये नांहि, पूरी राण प्रतापसी ॥३४॥
अकबरियो हत-आस, अंब खास झांखै अधम।
नाखै हिये निसास, पास न राण प्रतापसी ॥३५॥

जिण रो = जिसका। नेड़ो = नज़दीक।

भावार्थ—संसार में जिसका यश है उसी का जीवन है। अपयश को पास नहीं आने देना, इस प्रण को ध करने वाले हे प्रताप! तुम धन्य हो।

३२—एह = यह। सुपन = स्वप्न।

भावार्थ—हे महाराणा प्रताप! जगत में यश रह जाय, अजर और अमर धन है। देह में दुख और सुख तो र के समान (अस्थिर) हैं।

३३—जासी = चला जायगा। पासी = प्राप्त करेंगे।

भावार्थ—अकबर (संसार छोड़ कर) चला जाय दिल्ली को दूसरे प्राप्त करेंगे। परन्तु हे पुण्य-राशि शू प्रताप! तेरा यश संसार से कदापि नहीं जायगा।

३४—इकस = ईर्षा, लालसा।

भावार्थ—अकबर की इच्छा उसके मन ही मन में रह हे नरोत्तम! राणा प्रताप उसको पूरी मत करना अ उसकी अधीनता स्वीकार मत करना।

३५—हत आस = हतास। अंब खास = आमखास। झांखै = दे नाखै = डालता है। निसास = निश्वास।

भावार्थ—अकबर नाउम्मीद होकर आमख़ास को दे है और प्रताप को पास न देख कर हृदय से निश्वास छोड़ता है।

गीत

आयां दळ सबळ, सामहो आवै,
　　रंगिये खग खत्रवाट रतो ।
ओ नर नाह, नमो नहँ आवै,
　　पतसाहण, दरगाह पतो ॥१

दाटक अनड़ दंड नह दीधो,
　　दोयण घड़ सिर दाव दियो ।
मेळ न कियो जाय बिच महलां,
　　केलपुरै खग मेळ कियो ॥२॥

असपत इन्द्र अवनि आहड़ियां,
　　धारा झड़ियां सहै धका ।
घण पड़ियां सांकड़ियां घड़ियां
　　ना धीहड़ियां पढ़ी नका ॥३॥

सामहो = सामने । रंगिये खग = रक्त-रंजित्र खड्ग । खत्रवाट रत = क्षात्र धर्म में रत । नमो = झुक कर । पतसाहण दरगाह = बादशाह के दरबार में । पतो = प्रतापसिंह ।

भावार्थ—(अकबर की) बलवती सेना के आने पर क्षात्र-धर्म परायण, नरश्रेष्ठ महाराणा प्रताप रक्तरंजित तलवार लेकर उसके सामने आता है । पर सर झुकाकर बादशाह के दरबार में नहीं आता ।

२—दाटक = सुदृढ़, पराक्रमी । अनड़ = अनम्र । दंड = जुरमाना, खिराज । नह दीधो = नहीं दिया । दोयण = शत्रु । घड़ = सेना । मेळ = संधि । केलपुरै = केलवाड़ा में; यह स्थान मेवाड़ की वर्तमान राजधानी उदयपुर से लगभग ३८ मील उत्तर दिशा में है । महाराणा हंमीर के समय में यह कुछ दिनों तक मेवाड़ की राजधानी भी रहा था । इसलिये मेवाड़ के महाराणाओं के लिये प्राचीन ग्रंथों में कहीं कहीं केलपुरे भी लिखा मिलता है जिसका अर्थ है केलपुरा के अधिपति ।

भावार्थ—अनम्र और प्रतापी राणा प्रतापसिंह ने कभी खिराज नहीं दिया, बल्कि शत्रु-सैन्य के सिर पर धावा ही किया । केलपुरे के अधिपति राणा (प्रताप) ने महलों

आखी अणी रहै ऊदावत,
साखी आलम कलम सुणो।
राणे अकबर वार राखियौ,
पातळ हिंदू धरम पणो ॥४॥

—:०:—

में जाकर कभी बादशाह से संधि नहीं की। उसने तलवार ही से भेंट की।

३—असपत इन्द्र = बादशाहरूपी इन्द्र। आहड़ियाँ = आक्रमण करने पर। धारा झड़ियाँ = खड्ग-प्रहार; तलवारों की झड़ियाँ। घण = अनेक। सांकड़ियाँ घड़ियाँ = बुरी घड़ियाँ; संकट का समय। धीहड़ियाँ = पुत्रियाँ। नका = निकाह।

भावार्थ—बादशाहरूपी इन्द्र ज़ब उसकी भूमि पर आक्रमण करता है तब वह तलवारों की झड़ियों में धक्के सहता है और बहुत बुरे दिनों में भी उसकी पुत्रियों ने निकाह नहीं पढ़ा अर्थात् विवाह नहीं किया।

४—अणी = नोक, अग्र भाग। ऊदावत = उदयसिंह का पुत्र। आलम = संसार। कलम = यवन, मुसलमान। वार राखियौ = उबार कर रखा। पातळ = प्रतापसिंह। हिन्दू धरम पणों = हिन्दुत्व।

भावार्थ—उदयसिंह का पुत्र प्रताप सदैव (सेना के) आगे रहता है और उसने हिन्दू धर्म की रक्षा की। इस बात के साक्षी संसार और यवन सब हैं।

बाँकीदास

कविराजा बाँकीदास का जन्म मारवाड़ राज्य के पंचभद्रा परगने के भाड़ियावास गावँ में वि० सं० १८२८ में हुआ था। ये आशिया शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम फ़तहसिंह था जो डिंगल भाषा के अच्छे कवि थे। बाँकीदास ने पहले अपने घर ही पर थोड़ा सा पढ़ना—लिखना सीखा और डिंगल कविता का अभ्यास किया। फिर अपने गाँव से जोधपुर चले गये जहाँ भिन्न भिन्न गुरुओं से भाषा के काव्य—ग्रंथ, व्याकरण में सारस्वत और चंद्रिका, साहित्य में कुवलयानंद तथा काव्य-प्रकाश आदि विभिन्न ग्रंथों का अच्छा अध्ययन किया। वि० सं० १८६० में इनकी जोधपुर के तत्कालीन महाराजा मानसिंह से भेंट हुई। महाराजा मानसिंह बड़े गुणग्राही, काव्यप्रेमी और सरस्वती के सेवक थे। बाँकीदास के प्रौढ़ ज्ञान और काव्य—चमत्कार को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और अपने राजकवियों में स्थान देकर इन्हें गौरवान्वित किया। कालान्तर में महाराजा मानसिंह ने इनको अपना गुरु बनाया और कविराजा की उपाधि, पाँव में सोना, ताज़ीम आदि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। गुरू—शिष्य का सम्बन्ध सूचित करने के अभिप्राय से उक्त महाराजा ने इन्हें काग़ज़ों पर लगाने की मोहर रखने का मान भी दे रक्खा था, जिस पर निम्नलिखित शब्द अंकित थे :—

श्रीमन् मान धरणि पति, बहु गुन रास।
जिन भाषा गुरु कीनौं, बाँकीदास॥

बाँकीदास संस्कृत, डिंगल, फ़ारसी तथा व्रजभाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे और आशु कवि होने के साथ साथ इतिहास के भी भारी ज्ञाता थे। कहा जाता है कि एक बार ईरान का कोई सरदार भारतवर्ष में भ्रमण करता हुआ जोधपुर आया और महाराजा मानसिंह से मुलाक़ात करते समय बोला कि यदि आप के यहाँ कोई अच्छा इतिहासवेत्ता हो तो मैं उससे मिलना चाहता हूँ। इस पर महाराजा ने बाँकीदास को उसके पास भेजा। बाँकीदास के ऐतिहासिक ज्ञान, उनकी स्मरणशक्ति और उनके काव्य-चमत्कार को देख कर वह दंग रह गया और जिस समय जोधपुर से जाने लगा, महाराजा से कह गया कि जिस आदमी को आपने मेरे पास

भेजा था वह इतिहास का पूर्ण ज्ञाता ही नहीं, वरन् उच्च कोटि का कवि भी है। इतिहास का ऐसा पूर्ण और पुख्ता ज्ञान रखनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति मेरे देखने में अभी तक नहीं आया। इसे समस्त भूमण्डल के इतिहास का भारी ज्ञान है। मैं ईरान का रहनेवाला हूँ, पर ईरान का इतिहास भी मुझसे अधिक जानता है।

वाँकीदास का अन्तकाल वि० सं० १८६० में श्रावण सुदी ३ को जोधपुर में हुआ था। इनकी मृत्यु से महाराजा मानसिंह को असीम दुःख हुआ और निम्नलिखित शब्दों द्वारा उन्होंने अपने शोकोद्गार प्रकट किये :—

सद्विद्या बहु साज, वांकी थी वांका वसु।
कर सूधी कविराज, आज कठीगो आशिया ॥१॥
विद्या कुळ विख्यात, राज काज हर रहसरी।
वांका तो विण वात, किण आगळ मनरी कहां ॥२॥[1]

इनके ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

(१) सूर-छत्तीसी, (२) सीह-छत्तीसी, (३) वीर-विनोद (४) धवळ-पच्चीसी, (५) दातार-बावनी, (६) नीति-मंजरी, (७) सुपह-छत्तीसी, (८) वैसक-वार्ता, (९) मावड़िया-मिजाज, (१०) कृपण-दर्पण, (११) मोह-मर्दन, (१२) चुगल-मुख-चपेटिका, (१३) वैस-वार्ता, (१४) कुकवि-बत्तीसी, (१५) विदुर-बतीसी, (१६) भुरजाल-भूषण, (१७) गंगा-लहरी, (१८) झमाल नखशिख, (१९) जेहल-जस जड़ाव, (२०) सिद्धराय-छतीसी, (२१) संतोष बावनी, (२२) सुजत छत्तीसी, (२३) वचन विवेक पचीसी, (२४) कायर बावनी, (२५) कृपाण पचीसी, (२६) हमरोट-छत्तीसी, (२७) स्फुट संग्रह।

उपरोक्त ग्रन्थों को नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने तीन भागों में प्रकाशित किया है। इनके सिवा वाँकीदास के पाँच-सात दूसरे ग्रन्थों और २८०० के लगभग ऐतिहासिक वातों का पता भी हाल ही में लगा है।

---

१ हे वाकीदास! तेरी सुविद्यारूपी सामग्री के कारण पृथ्वी पर बहुत बाँकापन (निरालापन) था। हे आशिया! आज उसे सीधी कर के तू कहाँ चला गया? ॥१॥ विद्या और कुल में विख्यात हे वाँकीदास! तेरे बिना राज-कार्य की प्रत्येक गुप्त वात को किस के आगे कहें? ॥२॥

जाया रजपूतांणियाँ, वीरत दीधी वेह ।
प्रांण दियै पांणी पुणग, जावा न दिये जेह ॥७॥
भड़ां जिकांहूँ भामणै, केहा करूँ बखांण ।
पड़ियै हिर धड़ नह पड़ै, कर वहै केवांण ॥८॥
सूर भरोसे आपरै, आप भरोसे सीह ।
भिड़ दहुँ ऐ भाजै नहीं, नहीं मरण री वीह ॥९॥
घर आंगण मांहे घणां, त्रासे पड़ियां ताव ।
जुध आंगण सोहै जिकै, वालम वास वसाव ॥१०॥

भावार्थ—शूरवीरों में वीरत्व चढ़ता है और सतियों में सतीत्व। ये दोनों समान हैं। (शूरवीर) तलवार से कटते हैं और (सतियाँ) अग्नि को जल समझती हैं।

७—जाया = जन्म दिया। वीरत = वीरता। दीधी = दी, प्रदान की। वेह = विधाता ने। पांणी = तेज को। पुणग = तनिक भी।

भावार्थ—(वीरों को) राजपूतनियों ने जन्म दिया और विधाता ने वीरता प्रदान की, जो प्राणों को देकर भी अपनी प्रतिष्ठा को किंचित मात्र भी नहीं जाने देते।

८—भामणै = बलिहारी है। वाहै = चलाते हैं। केवांण = तलवार। बखांण = प्रशंसा।

भावार्थ—उन वीरों की बलिहारी है; प्रशंसा कैसे की जाय जिनका सर कट जाने पर भी धड़ ज़मीन पर नहीं गिरता और हाथ तलवार चलाते रहते हैं।

९—सीह = सिंह। ऐ = ये। वीह = भय।

भावार्थ—शूरवीर और सिंह अपने भरोसे पर रहते हैं। ये दोनों एक बार भिड़ जाने पर फिर नहीं भागते, इनको मृत्यु का भय नहीं।

१०—मांहे = मध्य, में। ताव = संताप, संकट। त्रासै = भयभीत हो जाते हैं।

भावार्थ—घर के आँगन में शोभा देने वाले बहुत हैं जो कष्ट आ पड़ने पर भयभीत हो जाते हैं। हे प्रिय! जो रणांगण में शोभा देनेवाले हों उनके पास वास बसाओ (घर बसाओ)।

सखी अमीणो साहिबो, वाँकम सूं भरियोह ।
रण विकसै रितुराज मे, ज्यूं तरवर हरियोह ॥११॥
सखी अमीणो साहिबो, निरभै काळो नाग ।
सिर राखै मिण सांमध्रम, रीझै सिंधू राग ॥१२॥
सखी अमीणो साहिबो, सूर धीर समरत्थ ।
जुध मे वामण डंड जिम, हेली वाधै हत्थ ॥१३॥
सखी अमीणा कंथ री, पूरी एह प्रतीत ।
कै जासी सुर धंगड़े, कै आसी रण जीत ॥१४॥
छूटा जामण मरण सूं, भवसागर तिरियाह ।
मुँवा जूँझ जे रण मही, वे नर ऊवरियाह ॥१५॥

—अमीणो = हमारा, मेरा । वाँकम = वक्रपन । विकसै = विकसित होता है । ऋतुराज = वसंत । साहिबो = प्रीतम ।

भावार्थ—हे सखी ! मेरा पति वक्रपन से भरा हुआ है। युद्ध में वह इस तरह प्रफुल्लित होता है जिस तरह वसंत में वृक्ष ।

—निरभै = निडर । काळो नाग = काला सर्प । मिण = मणि । सिंधू राग = वीररस वर्द्धक राग । सांमध्रम = स्वामि भक्ति ।

भावार्थ—हे सखी ! मेरा प्रीतम निडर, काला साँप है जो अपने मस्तक पर स्वामिभक्तिरूपी मणि को धारण करता है और सिंधू राग को सुन कर रीझता है ।

१३—वामण दंड = वामनावतार के दंड के समान । हेली = हे अलि, हे सखी । वाधै = बढ़ते हैं ।

भावार्थ—हे सखी ! मेरा पति शूरवीर, धीर और समर्थ है। हे सखी ! युद्ध में उसके हाथ वामनावतार (विष्णु) के दंड के समान बढ़ते हैं ।

१४—एह = यह । प्रतीत = विश्वास । सुर धंगड़े = देवताओं के गावँ, स्वर्ग ।

भावार्थ—हे सखी मेरे पति का यह पूरा भरोसा है कि या तो वह स्वर्ग को जायगा या युद्ध को जीत कर आवेगा ।

१५—जामण = जन्म । तिरियाह = तैर गये, पार कर गये । मुँवा = मरे । जूँझ = युद्ध करके । मही = में । ऊवरियाह = अमर हो गये ।

हाथळ बळ निरभै हियो, सरभर न को समत्थ ।
सीह अकेला संचरै, सीहां केहा सत्थ ॥१६॥
वाघ करै नह कोट वन, वाघ करै नह वाड़ ।
वाघां रा वघवाव सूं, झिलै अंगजी झाड़ ॥१७॥
गाज इतै ऊखेड़ गज, माझळ वन तर मूळ ।
जागै नह थह में जितै, सझ हाथळ सादूळ ॥१८॥
मैंगळ एथी आव मत, वाघाँ केरी वाट ।
सांप अगूठा मेळ ज्यूं, कदियक हुसी कुघाट ॥१९॥

भावार्थ—जो मनुष्य युद्ध करके रण-भूमि में मरे, वे जन्म-मरण के बँधन से मुक्त हो गये, भवसागर से पार हो गये और अमर गये।

१६—हाथळ = पंजा। हियो = हृदय। सरभर = समानता करने को। को = कोई भी। समत्थ = समर्थ। केहा = कैसा।

भावार्थ—पंजे के बल पर सिंह हृदय में निडर है, उसकी समानता करने वाला कोई भी दूसरा नहीं। सिंह अकेला ही घूमता है। सिंहों का साथी कौन ?

१७—बाघ = (सं० व्याघ्र) सिंह। कोट = प्राकार। वाड़ = काँटों की दीवार। वघवाव सूं = व्याघ्र के शरीर की गंध से। झिलै = उन्नति के शिखर पर पहुँचते हैं। अंगजी = अपराजित। झाड़ = वृक्ष।

भावार्थ = सिंह वन के चारों ओर न तो कोट बनाता है और न काँटों की दीवार लगाता है सिंहों के शरीर की गंध ही से छोटे छोटे वृक्ष उन्नति के शिखर पर पहुँच जाते हैं।

१८—ऊखेड़ = उखाड़। माझळ = में। तर = वृक्ष। थह = माँद। जितै = जब तक। सादूळ = (सं० शार्दूल) सिंह।

भावार्थ—हे गज ! जब तक सिंह अपनी माँद में जग न जाय और अपने पंजे को ठीक न कर ले तब तक तू गरज ले और वन के वृक्षों की जड़ें उखाड़ ले।

१९—मैंगळ = हाथी। एथी = इधर; वघाँ केरी = सिंहों के। वाट = मार्ग। साँप अँगूठा मेळ ज्यूँ = साँप और अँगूठे के मेल की तरह; सहसा; दैवात्। कदियक = किसी दिन। कुघाट = बुरा हाल। हुसी = होगा।

सूतौ थाहर: नींद सुख, सादूळौ बळवंत ।
वन कांठै मारग वहै, पग पग हौळ पड़ंत ॥२०॥
सीहाँ देस विदेस सम, सीहाँ किसा उतन्न ।
सीह जिकै वन संचरै, कै सीहाँरो वन्न ॥२१॥
कैहर कुंभ विदारियौ, गजमोती खिरियाह ।
जाँणे काळा जळद सूँ, ओळा ओसरियाह ॥२२॥
कुण दूजै चालै कहाँ, मृगपति वाळै माग ।
जुध में काचा ताग जिम, तोड़ै ऊमर ताग ॥२३॥

भावार्थ—हे हाथी ! इधर सिंहों के मार्ग की तरफ़ मत आ । साँप और अंगूठे के मेल की तरह किसी दिन तेरा बुरा हवाल होगा (अर्थात् किसी दिन अचानक मारा जायगा)।

२०—थाहर = माँद । कांठे = समीप । हौल पड़ंत = डवके पड़ते हैं; घवड़ाता है । वहै = चलते हुए ।

भावार्थ—वलवान् सिंह अपनी माँद में सुखपूर्वक सोया हुआ है । पर उस वन के पास वाले मार्ग पर चलते हुए हाथी के मन में पग पग पर डवके पड़ रहे हैं (अर्थात् उसके मन में यह भय बसा हुआ है कि अचानक कहीं से आकर सिंह उस पर हमला न कर दे)

२१—उतन्न = वतन ।

भावार्थ—सिंहों के लिये देश-विदेश बराबर हैं । सिंहों का वतन कैसा ? सिंह जिन वनों में पहुँच जाते हैं वे ही वन उनके अपने स्वदेश हो जाते हैं ।

२२—खिरियाह = गिरे । ओळा = ओले । ओसरियाह = बरसने लगे ।

भावार्थ—सिंह ने हाथी का कुंभस्थल फोड़ दिया जिससे गजमोती बिखर पड़े । ऐसा ज्ञान पड़ता था मानो काले बादल से ओले बरसने लगे हों ।

२३—कुण = कौन । दूजे = दूसरा । माग = मार्ग । ताग = धागा ।

भावार्थ—कहिये, सिंह के मार्ग पर और दूसरा कौन चल सकता है ? वह युद्ध में कच्चे धागे के समान अपने आयुरूपी तंतु को तोड़ डालता है ।

घाल घणा घर पातळा, आयौ थह में आप।
सूतौ नाहर नींद सुख, पौहरौ दियै प्रताप ॥२४॥
केळ रहै नित कांपती, कायर जणे कपूर।
सीहण रण सांके नहीं, सीह जणे रण सूर ॥२५॥
चमर ढुळै नह सीह सिर, छत्र न धारे सीह।
हाथळ रा बळ सूं हुवौ, औ मृगराज अबीह ॥२६॥
वन माझळ वघवाव सूं, दुरद विसूकै डांण।
जेठ लुवां सूकंत जिम, निरजल देख निवांण ॥२७॥
अळियळ आज करंत नह, गयँद कपोळां गान।
सिंहनाद मद सूकियौ, औ कीजै अनुमान ॥२८॥

२४—घाल = करके। घणा = बहुत। पातळा = पतले। थह = माँद।

भावार्थ—बहुत से घरों को पतला बनाकर (बहुत से घरों के मनुष्यों को मार कर) सिंह अपनी माँद में आया और सुखपूर्वक निद्रा में सो रहा। उसका प्रताप (आतंक) उसका पहरा देने लगा।

२५—केळ = कदली का वृक्ष। जणे = पैदा करके। सीहण = सिंहनी।

भावार्थ—कायर कपूर को जन्म देकर केल हमेशा काँपती रहती है। रणवीर सिंहों को पैदा करके सिंहनी डरती नहीं है।

२६—औ = यह। अबीह = निर्भय।

भावार्थ—सिंह के सिर पर चँवर नहीं डुलाये जाते और सिंह कभी मस्तक पर छत्र धारण नहीं करता। सिंह अपने पंजे के बल से ही निर्भय हुआ है।

२७—माझळ = में। वघवाव सूं = सिंह के शरीर की गंध से। दुरद = हाथी। विसूकै = सूख जाता है। डांण = मद। जेठ लुवाँ = जेठ महीने की लुओं से। निवांण = जलाशय।

भावार्थ—वन में सिंह के शरीर की गंध से हाथी का मद सूख जाता है, जिस तरह जेठ महीने की लू से जलाशय सूखे दीख पड़ते हैं।

२८—अळियळ = भ्रमर।

(२)

साह तणा खूनी सबळ, आय बचै इण ठोड़ ।
ओ सातूं अकलीम में, चावो गढ़ चीतोड़ ॥१॥
दिन दुलहां माणीगरां, इण गढ़ रा धणियांह ।
आणी सींगल दीप सूं, पेखे पदमणियांह ॥२॥
आगै इण गढ़ वासतै, समर हुआ जग साख ।
सात लाख हिंदू मुवा, असुर अठारे लाख ॥३॥
जठै प्रतपियो प्रगट जो, हर अवतार हमीर ।
नीसरतो जूड़ा मही, नित निरभर नद नीर ॥४॥

भावार्थ—हाथी के कपोलों पर आज भ्रमर गुंजार नहीं कर रहे हैं। यह अनुमान होता है कि सिंहनाद से उनका मद सूख गया है।

—साह तणा = बादशाह के। खूनी = अपराधी। आय बचै = आकर बच जाते हैं। इण = इस। ठोड़ = जगह। ओ = यह। सातूं = सातों। अकलीम = विलायत। चावो = प्रसिद्ध।

भावार्थ—बादशाहों के सबल अपराधी इस स्थान (चित्तौड़) में आकर बच जाते हैं, यह चित्तौड़-दुर्ग सातों विलायतों में प्रसिद्ध है।

-दिन दुलहां = बाँके वीर। माणीगरां = भोगी। धणियांह = स्वामियों ने। सींगल दीप सूं = सिंहल दीप से। आणी = लाए। पेखे = देख कर।

भावार्थ—इस गढ़ के बाँके वीर स्वामी सिंहलद्वीप से पद्मिनी नारियों को देख कर लाये।

३—जग साख = संसार साक्षी है। मुवा = मरे। आगै = पहले, प्राचीन काल में।

भावार्थ—पहले इस गढ़ के लिये अनेकों युद्ध हुए जिसका संसार साक्षी है। (इन युद्धों में) सात लाख हिंदू और अठारह लाख यवन काम आये।

४—जठै = जहाँ। प्रतपियो = राज्य किया। हमीर = महाराणा हंमीर; इन्होंने वि० सं० १३८२ में चित्तौड़ को मुसलमानों से छीन लिया और ३८ वर्ष तक राज्य कर वि० सं० १४२१ में

सिर मांडव गुजरात सिर, दळ सफ कीधी दौड़।
उण सांगा रो बैसणो, चंगो गढ़ चीतोड़ ॥५॥
सब दिन गोमुख कुंडसिर, पाणी सूं भरपूर।
अन भुरजाळां भुरज सा, गढ़ चीतोड़ कंगूर ॥६॥
नीसरणी लागै नहीं, लागै नहीं सुरंग।
लड़ नहिं लीधो जाय ओ, दीधो जाय दुरंग ॥७॥
पर गढ़ लेणा रोप पग, अरि सिर देणा तोड़।
भरा हूँत नहिं धापणो, खूंदाळमां न खोड़ ॥८॥

स्वर्गवासी हुए। नीसरतो = निकलता था। जूड़ा महीं = केशों के जटा-जूट में से। निरझर नद नीर = गंगाजल।

भावार्थ—जहाँ शिव का अवतार राणा हंमीर हुआ, जिसके जटा-जूट में से निरंतर गंगा-जल निकलता था।

५—सिर मांडव = मांडू पर। मांडू = मालवे की प्राचीन राजधानी। गुजरात सिर = गुजरात पर। दळ सफ = सेना सजाकर। कीधी दौड़ = चढ़ाई की। उण = उस। बैसणो = निवास स्थान, राजधानी।

भावार्थ—मांडू और गुजरात के बादशाह पर दल जोड़ कर जिस राणा सांगा ने (संग्रामसिंह ने) चढ़ाई की चित्तौड़ उसी की राजधानी थी।

६—गोमुख कुंड = चित्तौड़गढ़ का प्रसिद्ध कुंड जो साल भर तक पानी से लबालब भरा रहता है। अन = अन्य। भुरजाळां = गढ़। भुरज सा = बुर्ज के समान। कंगूर = कंगूरा।

भावार्थ—गोमुख का कुंड सदा पानी से लबालब भरा रहता है और अन्य गढ़ों की बुर्जें चित्तौड़ के कंगूरों के समान हैं।

७—लीधो जाय = लिया जाय। दुरंग = दुर्ग।

भावार्थ—इसके न तो निसेनी लगती है और न सुरंग लगता है। यह गढ़ लड़कर नहीं लिया जा सकता, देने से जाता है।

८—पर = शत्रु का, परायों का। लेणा = लेना। रोप पग = पाँव जमाकर। हूँत = से। धापणो = तृप्त होना; संतुष्ट होना। खूंदाळमां = वीर पुरुषों में। खोड़ = दोष।

की बाँधव की दीकरा, हुकम दिए जो फेर।
पातसाह जानूं पकड़, चाढ़े गढ़ ग्वालेर ॥९॥
राखै राण बराबरी, आतपत्र उतबंग।
ते अकबर खड़ आवियो, गाँजण चीत दुरंग ॥१०॥
के मुलतानी कावळी, पैसावरी प्रचण्ड।
नेसापुर रा नीपना, बगदादी बळ बंड ॥११॥
सामी रूमी संजरी, गोरी कासगरीह।
ईरानी यमनी अडर, सीराजी रनसीह ॥१२॥
बलखी हिलबी बाबरी, रूसी तूसी रोद।
अै लै अकबर आवियो, सज ऊभा सीसोद ॥१३॥

भावार्थ—पाँव जमाकर शत्रु का गढ़ लेने से, उसका सिर तोड़ने से और पृथ्वी को जीत कर भी संतुष्ट न होने से वीर पुरुषों को दोष नहीं लगता।

९—की = क्या। बाँधव = बंध वर्ग। दीकरा = बेटे। हुकम दिए जो फेर = हुक्म को नहीं माना। जानूं = उनको। चाढ़े = भेज दिये।

भावार्थ—क्या भाई और क्या बेटे, जिस किसी ने भी हुक्म को न माना बादशाह ने उसको ग्वालियर के क़िले में भेज दिया।

१०—आतपत्र = छत्र। उतबंग = उत्तमांग, मस्तक। खड़ आवियो = चढ़ आया। गांजण = तोड़ने को। चीत दुरंग = चित्तौड़ का दुर्ग।

भावार्थ—राणा (उदयसिंह) ही अकबर की बराबरी करता और मस्तक पर छत्र धारण करता है। इसलिये चित्तौड़ के दुर्ग को तोड़ने के लिये अकबर उस पर चढ़ आया।

११-१३—के = कितने ही। रा = का, के। नीपना = उत्पन्न हुए। नेसापुर रा नीपना = नेसापुर में जन्मे हुए; नेसापुरी। अै लै = इनको लेकर। सज ऊभा सीसोद = सीसोदिये भी सज कर खड़े हो गये।

भावार्थ—उसकी सेना में कितने ही मुलतानी, काबुली, प्रचंड पेशावरी, नेशापुरी, बग़दादी, श्यामी, रूमी, संजरी गोरी,

चकतो अकबर चक्कवै, पतसाहां पतसाह।
चतुरंगी फौजां चढ़ै, दिए दुरंगां ढाह ॥१४॥
अकबर साह जलालदी, सितवा वली खुदाय।
बाजदार कर बंदगी, ताजदार होय जाय ॥१५॥
जाफ़रान नेपत जठै, पग पग मीठा नीर।
सदा बिराजे सारदा, सो लीधा कसमीर ॥१६॥
गुड़ पाखर पूरब गयो, नभ ओ घसते सीस।
आटो करै उड़ाविया, जेण पठाणां पीस ॥१७॥

काशगरी, ईरानी, निडर यमनी, रणसिंह शीराज़ी बलखी, हिलबी, बाबरी, रूसी, तूसी मुसलमान योद्धा थे। इनको लेकर अकबर आया। सीसोदिये भी सुसज्जित होकर लड़ने को तैयार हो गये।

१४—चकतो = चंगेज़ खाँ का वंशज। चक्कवै = चक्रवर्ती राजा। पतसाहाँ पतसाह = बादशाहों का बादशाह। दुरंगा = गढ़ों को। दिए ढाह = गिरा दिये।

भावार्थ—चंगेज खाँ के वंशधर, शाहंशाह चक्रवर्ती राजा अकबर ने अपनी चतुरंगिणी सेना से कई दुर्ग गिरा दिये।

१५—जलालदी = जलालुद्दीन। खितवा = खुतबे में। वली खुदाय = ख़ुदा की तरफ का महापुरुष। बाजदार = करद व्यक्ति। ताजदार = बादशाह, राजा।

भावार्थ—जलालुद्दीन अकबर बादशाह वली ख़ुदा ने कई बाजदारों (ग़रीबों) को ताज़दार (राजा) बना दिया।

१६—ज़ाफरान = केसर। नेपत = पैदा होती है। जठै = जहाँ पर। लीधो = लिया। सारदा = सरस्वती; पांडित्य।

भावार्थ—जहाँ केसर पैदा होती है, पग-पग पर मीठा ज़ल मिलता है और सरस्वती विराजती है, उस काश्मीर देश को भी ले लिया।

१७—गुड़ पाखर = कवचधारी सवार, अथवा पाखरवाले घोड़े। नभ ओ घसते सीस = मस्तक को आकाश की ओर उठाये हुए; ऊँचा मस्तक किये हुए, विजयी।

दळ बळ सूं घेरो दियो, प्रबळ हुमाऊँ पूत।
गैलोतां चीतोड़ गढ़, मिल कीधो मजबूत ॥१८॥
अमिट भड़ां बळ अंग में, कोठारां सामान।
सामध्रमो ठाकुर सको, दिए रंग दुनियान ॥१९॥
पतो जगारो विरदपत, वीरम रो जैमाल।
केलपुरो कमधज दुहूँ, हुआ चीत गढ़ ढाल ॥२०॥
के दरवाजा कांगरां, ऊभा भड़ अरडींग।
भला चीत भुरजाळरा, आभ लगावा सींग ॥२१॥

भावार्थ—उसके कवचधारी सवार मस्तक को ऊँचा किये हुए पूर्व में गये और पठानों को आटे की तरह पीसकर उड़ा दिया।

१८—गैलोतां = गहलोतों ने।

भावार्थ—उस हुमायूँ के पुत्र (अकबर) ने दलबल सहित घेरा डाल दिया तो गहलोतों ने भी चित्तौड़ को सजकर मज़बूत बना लिया।

१९—अमिट = असीम। भड़ां = शूरवीरों के। कोठारां = कोठार में। सामध्रमी = स्वामिभक्त। ठाकुर = सरदार। सको = सब कोई। दिए रंग दुनियान = संसार जिनकी प्रशंसा करता है।

भावार्थ—योद्धाओं के अंग में असीम बल है, कोठारों में सामान है और सब सामंत स्वामिभक्त हैं जिनकी सब कोई प्रशंसा करते हैं।

२०—पतो जगा रो = जग्गा का पुत्र पत्ता। विरदपत = महा यशस्वी। केलपुरो = सीसोदिया (पत्ता)। कमधज = राठौड़। वीरम रो जैमाल = वीरमदेव का पुत्र जयमल।

भावार्थ—यशस्वी पत्ता जग्गा का पुत्र और जयमल वीरमदेव का पुत्र था। यह दोनों, सीसोदिया और राठौड़, चित्तौड़ के रक्षक हो गये।

२१—के = कितने ही। कांगरां = कंगूरों पर। ऊभा = खड़े हुए। भड़ = भट, वीर। अरडींग = जबरदस्त। चित = चित्तौड़। भुरजाळ = गढ़। आभ = आकाश। लगावा सींग = यश बढ़ाने को।

उठै सोर झाळां अनळ, आभ धुआँ अँधियार।
ओळां जिम गोळा पड़ै, मेछां कटक मंझार ॥२२॥
भुरजमाळ फण मंडळी, सोर झाळ विष झाळ।
जाण सेस बैठो जमी, मिस चीतोड़ कराळ ॥२३॥
के गोळां के गोळियां, के तरवारां धार।
मरै गड़ै कवरां महीं, बीबा मंसबदार ॥२४॥
ढूकै नह गढ़ ढूकड़ा, अकबर रा उमराव।
करै वीर गढ़ रा कवच, दोय टूक इक घाव ॥२५॥

भावार्थ—कई जबरदस्त वीर दरवाजों और कंगूरों पर खड़े हुए कहते हैं कि चित्तौड़ गढ़ के यश को आकाश तक बढ़ायेंगे।

२२—सोर = बारूद। झाळां = ज्वाला। ओळां = ओले। मेछां = मुसलमानों के।

भावार्थ—अग्नि और बारूद की ज्वाला उठी और नभ मंडल में धुआँ छा जाने से अंधेरा हो गया; ओलों की तरह गोले मुसलमानों के कटक में गिरने लगे।

२३—भुरजमाळ = बुर्ज की माला। फण मंडली = सर्प के फण का मंडल। जाण = मानो। मिस चीत्तौड़ = चित्तौड़ के रूप में।

भावार्थ—बुर्जों की माला फण-मंडली है जिसमें से बारूद की ज्वालारूपी विष की ज्वाला निकल रही है, मानो भयंकर शेषनाग चित्तौड़ के रूप में पृथ्वी पर बैठा है।

२४—बीबा मंसबदार = मुसलनान उमराव।

भावार्थ—कितने ही गोलों से, कितने ही गोलियों से और कितने ही तलवार की धारों से मरकर, मुसलमान उमराव क़बरों में गड़ते हैं।

२५—ढूके = पहुँचते। ढूकड़ा = नजदीक। घाव = चोट। गढ़ रा कवच = गढ़ के रक्षक।

भावार्थ—अकबर के उमराव गढ़ के पास तक नहीं पहुँच पाते, गढ़ के वीर रक्षक एक ही चोट में उनके दो टुकड़े कर डालते हैं।

भड़ां लिरीजे हाजरी, नित दीजे मोरांह ।
जोध फिरै गढ़ जाबतै, पै दर पै पोहरांह ॥२६॥
सूनी थाहर सिंघ री, जाय सके नहिं कोय ।
सिंह खड़ां थह सिंहरी, क्यों न भयंकर होय ॥२७॥
किसूं सफीळां भुरज की, काहू बजर कपाट ।
कोटां नूं निधड़क करै, रजपूतां रा थाट ॥२८॥
अमलां खोबा बाजियां, मचे भड़ां मनुवार ।
जांगड़िया दूहा दिये, सिंधू राग मझार ॥२९॥
दळ अकबर तोपां दगै, सूकै नीर निवाण ।
गोळां लागे चीतगढ़, मेंगळ माछर जाण ॥३०॥

२६—भड़ाँ = वीरों की । लिरीजे = ली जाती है । मोरांह = मुहरें । जाबतै = रक्षा के लिये । पै दर पै = हाज़िरी लेकर उनको बारी बारी से । पोहरांह = पहरे पर ।

भावार्थ—वीरों की हाज़िरी लेकर उनको हमेशा मुहरें दी जाती हैं; वे बारी बारी से गढ़ की रक्षा के लिये पहरे पर फिरते हैं ।

२७—थाहर = गुफा । थह = माँद, गुफा ।

भावार्थ—सिंह की सूनी गुफा में भी कोई नहीं जा सकता, तो फिर सिंह के होते हुये वह अधिक भयंकर क्यों न हो !

२८—किसूँ = क्या । सफीळाँ = (अ० सफ़ील) शहरपनाह, प्राचीर । बजर = वज्र, मजबूत । थाट = समूह ।

भावार्थ—शहरपनाह, बुर्ज और मज़बूत किवाड़ होने से क्या ? उसकी कोट को तो राजपूतों का समूह भय शून्य बनाता है अर्थात् उसकी रक्षा तो राजपूत करते हैं ।

२९—अमलाँ = अफ़ीम । खोबा बाजियाँ = चुल्लू भर कर । जाँगडिया = ढोली । सिंधूराग = युद्ध के समय वीरों को उत्तेजित करनेवाला एक राग विशेष ।

भावार्थ—वीरों में चुल्लू भर भरकर अफ़ीम की मनुहार चल रही है, और ढोली सिंधूराग में दोहे कह रहे हैं ।

३०—तोपां दगै = तोपों के दगने से । सूकै = सूख जाता है । निवाण = जलाशय; कुएँ-बावलियाँ आदि । मेंगळ = हाथी । माछर = मच्छर ।

अई चीतगढ़ ओर सूं, तूं गांजियो न जाय।
भीतर ज्यां मन भावणो, बाहर जिकां बलाय ॥३१॥
अई चीतगढ़ ऊधरा, सकल गढ़ां सिरताज।
तूं जूनो परणे नवी, असुरांरी अफवाज ॥३२॥
जां चितोड़ न तोड़ियो, तां की कीधो काम।
अकबर हिये विचार ओ, जक नहीं आठूं जाम ॥३३॥
अकबर सूं ऊभो करै, आसिफखांन अरज्ज।
हजरत गढ़ कीजे हलो, करो जेज किण कज्ज ॥३४॥

भावार्थ—अकबर के दल की तोपों के चलने से जलाशयों का जल सूख जाता है, पर चित्तौड़गढ़ पर गोले ऐसे लगते हैं जैसे हाथी के मच्छर की चोट लगती हो।

३१—अई = ऐ, हे गांजियो न जाय = तोड़ा नहीं जाता। ज्यां = जो। मन भावणो = मनोहर। बलाय = आफ़त।

भावार्थ—हे चित्तौड़गढ़! तू दूसरों से तोड़ा नहीं जा सकता, तू भीतर से मनोहर और बाहर से आफ़त रूप है।

३२—ऊधरा = ऊँचा। असुरांरी = मुसलमानों की। अफवाज = सेना। जूनो = पुराना, वृद्ध। परणे = विवाह करता है। नवी = नई।

भावार्थ—हे सब किलों के सिरताज ऊँचे चित्तौड़गढ़! तू पुराना (वृद्ध) होते हुये भी मुसलमानों की सेनारूपी नई नारी से विवाह करता है।

३३—जां जो। तां = तो। की = क्या। जक = आराम। जाम = पहर।

भावार्थ—जो यदि चित्तौड़ को नहीं तोड़ा तो फिर काम ही क्या किया। अकबर के मन में यह विचार रहता है और आठों पहर चैन नहीं पड़ती।

३४—अरज्ज = अर्ज। हलो = हल्ला, हमला। जेज = विलम्ब। किण कज्ज = किस लिये।

भावार्थ—आसफ़ खाँ खड़ा हुआ अकबर से अर्ज करता है कि हजरत अब विलंब किस लिये करते हैं, हमला कर दीजिये।

आसिफखां अकबर कहै, भीतां भुरजां जोय ॥
बांको गढ़ भड़ बांकड़ा, हूलों कियां की होय ॥३५॥
भीतरलां फूटां भड़ां, कै खूटां सामान ॥
इण गढ़ में होसी अमल, खम तू आसिफखान ॥३६॥
जयमल पतै जवाव जद, हजरत तणी हजूर ।
मंत्र करै लिख मेलियो, सांभळ हरखै सूर ॥३७॥
गांजीजे नह चीत गढ़, वींट दळां वळियांह ।
गांजीजे नह गंधगज, गाछ घणां गिळियांह ॥३८॥

३५—भीतां=दीवारों को । भुरजों=बुर्जों को । जोय=देखकर । भड़=वीर । बांकड़ा=बांके, विकट । की=क्या ।

भावार्थ—दीवारों और बुर्जों को देख कर अकबर आसफ खाँ से कहता है कि गढ़ और वीर दोनों ही बाँके हैं, आक्रमण करने से क्या होगा ?

३६—भीतरलां=भीतर के । फूटां भड़ां=वीरों में फूट पड़ने से । कै=या । खूटां=चुक जाने से । खम=धीरज धारण कर । अमल=अधिकार ।

भावार्थ—भीतर के वीरों में फूट पड़ने से या खाद्य-सामग्री के चुक जाने से इस गढ़ पर हमारा अधिकार होगा । हे आसफखाँ ! तू धीरज धारण कर ।

३७—जद=जब, उस समय । मंत्र करै=मंत्रणा कर के । सांभळ =सुन कर ।

भावार्थ—उस समय जयमल और पत्ता ने सलाह कर के बादशाह को कुछ जवाब लिख भेजा जिसको सुन कर वीर बहुत हर्षित हुए ।

३८—गांजीजे नह=तोड़ा नहीं जायगा । वींट=घेरा । दळां= फौजों के । वळियांह=लगने से । गंधगज=मस्त हाथी । माछ=मच्छर, म्लेच्छ । घणां=बहुत । मिलियांह= मिलने से ।

भावार्थ—यह चित्तौड़गढ़ सेना के घेरा लगने से नहीं तोड़ा जा सकेगा, जिस तरह बहुत से मच्छर मिल कर मस्त हाथी को नहीं परास्त कर सकते ।

इन्द्रानुज रो डंड जो, आवै हरतां आंच ।
उणरी नीसरणी हुए, इण गढ़ लागै सांच ॥३९॥
काचा भड़ां कसूर पिण, किलां कसूर न तार ।
प्राण बचावण पिसणनूं, सूंपै ग्रहै न सार ॥४०॥
केवी नूं गढ़ कूंचियां, सूंपै छोड़ सरम्म ।
मुख ज्यांरा दीठां मिटै, धर राजपूत धरम्म ॥४१॥
मेळायां भुरजाळ ज्यां, पांणी ची गम पैठ ।
जिके कहाणां खोय जस, वसुधा मंडळ बैठ ॥४२॥

३९—इन्द्रानुज = इन्द्र का भाई (वामनावतार)। हरतां = दूर करते हुए। आँच = आग।

भावार्थ—इन्द्रानुज (विष्णु) का दंड यदि आग को हटाता हुआ आवे और उसकी निसेनी बनाई जय तो वह इस गढ़ पर ठीक लग सकती है।

४०—पिण = परंतु। किलां = किलों का । तार = लेश मात्र। बचावण = बचाने को। पिसण नूं = शत्रु को। सूंपै = सौंपते हैं। सार = तलवार।

भावार्थ—गढ़ का दोष नहीं, कच्चे शूरवीरों का दोष है जो अपने प्राणों को बचाने के लिये उसे शत्रुओं को सौंप देते हैं और हाथ में तलवार नहीं पकड़ते।

४१—केवी नूं = शत्रु को । कुंचियां = कुंजियाँ । सरम्म = शर्म्म। दीठां = देखने से। धर = धरा; पृथ्वी।

भावार्थ—जो लज्जा छोड़ कर गढ़ की कुंजियाँ शत्रु को सौंप देते हैं, उनका मुख देखने ही से राजपूतों के धर्म का नाश होता है।

४२—मेळायां = दिलवा दिया, खो दिया। ज्यां = जिन्होंने। पांणे ची = बल की। गम पैठ = पैठ उड़ाकर। जिके = वे। कहांणा = कहलाए। बैठ = बेगारी, स्वामीद्रोही।

भावार्थ = बल (रजपूती) की प्रतिष्ठा को खोकर जिन्होंने गढ़ को संकट में डलवा दिया, वे अपने यश को खोकर पृथ्वी पर स्वामिद्रोही कहलाये।

जुध भागां थांभै जिको, गढ़ तजियां नहि गत्त।
गढ़ नूं म्हें बांध्यो गळै, आवो सौ असपत्त ॥४३॥
रतन दिली सूं आणियो, सूरा है समरत्थ।
ग्रहियो म्हें चीतोड़ गढ़, किसूं अछेरा कत्थ ॥४४॥
समर तजण सूं सौगुणो, दुरंग तजण रो दोष।
मरद दुरंग जातां मरै, मिलै जिकां नूं मोष ॥४५॥
बारा सुखनां खीजियो, अकबर साह जलाल।
उच्चरियो हूँ जीवतां, सिंहां पाड़ूं खाल ॥४६॥
पग मांडो जैमल पता; हूँ अकबर जगजीत।
चित्रकोट में जाणियो, चित्रकोट मझ चीत ॥४७॥

४३—जिको = जो। थांभै = आश्रय देता है, थामता है। गत्त = गति। म्हें = हमने। असपत्त = बादशाह, अकबर।

भावार्थ—जो (गढ़) युद्ध से भागे हुए वीरों को आश्रय प्रदान करता है, उस गढ़ को छोड़ने में भलाई नहीं है। (अतः) सौ बादशाह आ जायँ, हमने गढ़ को गले से लगा लिया है।

४४—रतन = रावल रत्नसिंह, पद्मिनी के पति। आणियो = लाये। किसूं = क्या। अछेरा = आश्चर्य्य। कत्थ = बात, कथा।

भावार्थ—कोई समर्थ वीर तो रत्नसिंह को दिल्ली से छुड़ा कर लाये थे, हमने यदि चित्तौड़गढ़ को (दूसरों के हाथों में जाने से) रोका तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है?

४५—जिका नूं = उनको। मोष = मोक्ष।

भावार्थ—युद्ध छोड़ने वाले की अपेक्षा दुर्ग छोड़नेवाले को सौगुना पाप अधिक लगता है। जो मनुष्य जाते हुए दुर्ग के लिये मरते हैं उनको मोक्ष मिलता है।

४६—बारा सुखनां = बारह ही बातों से, निश्चय रूप से। खीजियो = चिढ़ गया। हूँ = मैं।

भावार्थ—जलालुद्दीन अकबर शाह बहुत खीज कर कहने लगा कि मैं जीवित सिंहों की खाल खींचनेवाला हूँ।

४७—पग मां डो = ठहरे रहो। चित्रकोट मझ चीत = चित्तौड़ में ही मेरा मन है।

पग मांडो जैमल पता, गढ़ मोसूं नहि दूर ।
लीधा इसा हज़ार गढ़, मो दादे तहमूर ॥४८॥
कर सूं ऐ न दियो किलो, ऊभा पगां अभंग ।
किलो लियां विण हूँ कठै, सरकूं लसकर संग ॥४६॥
बाबर नू जीत्यो नहीं, सांगो साहां साल ।
उणरे घर रा ऊमरा, मो आगे की माल ॥५०॥
लीधो इण गढ़ नूं लड़ै, संग बहादर साह ।
धकै हमाऊँ साहरै, रण तज लागो राह ॥५१॥

भावार्थ—हे जयमल और पत्ता! मैं संसार विजय अकबर हूँ। मैंने चित्तौड़ को अपने मन में चित्रांकित कोट के समान समझ रखा है।

४८—तहमूर = तैमूरलंग।

भावार्थ—हे जयमल और पत्तां! खड़े रहो। गढ़ मुझसे दूर नहीं है। मेरे दादा तैमूर ने ऐसे हज़ारों गढ़ ले लिये थे।

४९—ऐ = ये। अभंग = अजेय। विण = बिना। कठै = कहाँ, कब। सरकूं = हटता हूँ। लसकर = सेना। ऊभा पगां = खड़े दम, जीते जी।

भावार्थ—ये अजेय वीर जीते जी अपने हाथ से क़िले को न देंगे। लेकिन क़िले को लिये बिना मैं भी अपनी सेना को हटाकर ले जानेवाला कहाँ हूँ।

५०—साहाँ साल = बादशाहों का काँटा। उणरे = उसके। घररा = घर के। मो = मेरे। की = क्या।

भावार्थ—बादशाहों का शल्य राणा संग्रामसिंह जब बाबर को नहीं जीत सका तो उसके घर के उमराव मेरे आगे क्या चीज हैं।

५१—लीधो = लिया। लड़ै = लड़कर। धकै = मुक़ाबले में। हुमाऊँ साहरे = हुमायूं बादशाह के।

भावार्थ—बहादुरशाह ने लड़कर इस गढ़ को जीता था। पर हुमायूँ बादशाह के सामने वह भी रण छोड़कर भाग निकला।

लागे मो इकबाल सूं, नीसरणी गयणांग ।
इण गढ़ क्यूं नहिं लागसी, खिवियां मो कर खाग ॥५२॥
चंद्रावत तज सामध्रम, विणहीं पड़ियां ताव ।
दुरगो भागो दुरगसूं, रामपुरा रो राव ॥५३॥
प्रगट कहै जैमल-पतो, अचळ अचळ कर अंग ।
कायर रेहण कढ गयां, दीपै कनक दुरंग ॥५४॥
तो में बीस हजार भड़, ग्यो दुरगो इक दूर ।
ताव पड़ै तोनूं किसूं, पड़ियां इक कंगूर ॥५५॥
असकंदर जो आवही, सुलेमान दळ साज ।
तोपी नह सूंपां तुनै, अकबर काहू आज ॥५६॥

५२—मो = मेरे । इकबाल = प्रताप, भाग्य, ऐश्वर्य्य । गयणांग = आकाश में, स्वर्ग के । खिविया = चमकने से । मो कर खाग = मेरे हाथ में तलवार ।

भावार्थ—मेरे प्रताप से स्वर्ग के भी निसेनी लग जाती है तो फिर मेरे हाथ में तलवार के चमकने से इस गढ़ के क्यों नहीं लगेगी ।

५३—चंद्रावत = रामपुरे का चंद्रावत राव दुर्गा । यह पहले मेवाड़ के महाराणा का विश्वास पात्र सेवक था । पर बाद में जाकर अकबर से मिल गया और बड़ा मंसबदार बन गया । ताव = ताप, तकलीफ ।

भावार्थ—रामपुरे का राव दुर्गादास विना ताव पहुँचे ही स्वामि-धर्म को छोड़ कर दुर्ग से भाग गया ।

५४—अचळ = पर्वत । अचळ = निश्चल, अटल । कढ़ गया = निकल गये । दीपै = प्रकाशित होता है । रेहण = सोने का मैल ।

भावार्थ—प्रकट में जयमल और पत्ता कहते हैं कि (हे दुर्ग !) तू अटल हो कर रह । कायररूपी मैल के निकल जाने से स्वर्ण-दुर्ग की ज्योति बढ़ गई है ।

५५—भावार्थ—तेरे साथ बीस हजार वीर हैं । एक दुर्गादास चला गया तो क्या हुआ । एक कंगूरे के गिर जाने के तेरे पर क्या आपत्ति आ सकती है ?

५६—तोपी = तो भी । असकंदर = सिकंदर । तहं सूंपां तुनै = तुझे नहीं छोड़ेंगे । काहू = क्या ।

खत्रियां रा खटतीस कुळ, त्रदस कोड़ तेतीस।
जिके खड़ा तौ जावते, अकबर किसूं करीस ॥५७॥
दिल्ली गयो अलावदी, कैदी करै रतन्न।
रजपूतां ही राखियो, जदतो करै जतन्न ॥५८॥
भीलन कूं न भळावियो, नहिं मेरां मींणाह।
तो नूं राण भळावियो, सोहड़ां सुकळणियांह ॥५९॥
पण लीधौ जैमल पते, मुरसां बांधे मोड़।
सिर साजे सूंपां नहीं, चकता नूं चीतोड़ ॥६०॥

भावार्थ—यदि सिकंदर और सुलेमान भी सेना इकट्ठ कर के आ जायँ तो भी हम तुझे नहीं देंगे। अकबर आज क्या चीज़ है ?

५७—खत्रियां रा = क्षत्रियों के। खटतीस कुल = छतीस वंश। त्रदस = देवता। तौ जावते = तेरी रक्षा के लिये।

भावार्थ—क्षत्रियों के छत्तीस वंश और तैंतीस करोड़ देवत जब तेरी रक्षा के लिये खड़े हैं तब अकबर क्या कर लेगा ?

५८—अलावदी = अलाउद्दीन। रतन्न = रावळ रत्नसिंह। जदतो = जब भी।

भावार्थ—रत्नसिंह को क़ैद करके जब अलाउद्दीन उसे दिल्ली ले गया तब भी राजपूतों ही ने तुझे रखा था।

५९—भळावियो = सौंपा है। सोहड़ां = सुभटों को। सुकळणियांह = अच्छे लक्षण अथवा कुलवाले।

भावार्थ—राणा (उदयसिंह) ने तुझे भील, मेर और मीणों की रक्षा में नहीं बल्कि अच्छे कुलवाले वीरों के हाथों में सौंपा है।

६०—पण = प्रण। मरसां = मरेंगे। मोड़ = सेहरा। सिर साजे = सिर के रहते हुए। चकता नूं = मुसलमानों को।

भावार्थ—जयमल और पत्ता ने सिर पर सेहरा बाँध कर अर्थात् सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेकर और मरने की प्रतिज्ञा कर कहा कि जीते जी चित्तौड़ को मुसलमानों को नहीं सौंपेंगे।

पतो माल गढ़ पुरुषरा, वणिया भु[illegible]ाम ।
दांतूसळ गढ़ दुरदरा, नेक उबारण नाम ॥६१॥
मारू परधर मारका, ठहरे समहर ठौड़ ।
ऊखाणों उज[illegible]ळ्यो, चढ़ जयमल चीतोड़ ॥६२॥
पाधर अकबर पतो, बिढे इसो वरियाम ।
सो गाजै चीतोड़ सिर, कीं इचरज रो काम ॥६३॥
ओ पातल सीसोदिया, ओ जयमल कमधज्ज, ।
एक सूर घर कज्ज है, एक सूर पर कज्ज ॥६४॥
तोड़ जोड़ ततबीर में, कसर न राखे काय ।
आप अक्कबर ओलियो, गढ़ वो लियो न जाय ॥६५॥

६१—माल = जयमल । गढ़ पुरुषरा = गढ़रूपी पुरुष के । वरियाम = उत्तम । दाँतूसळ = दाँत । दुरद = हाथी ।

भावार्थ—पत्ता और जयमल गढ़रूपी पुरुष के दो उत्तम भुजदंड बन गये और गढ़रूपी हाथी के दोनों दाँत बचाकर यश रखने के लिये तैयार हो गये ।

६२—मारू = मारवाड़ी । परधर = पराई धरती । मारका = मारनेवाला । उजवाळियो = उज्ज्वल कर दिया । समहर = समर, युद्ध । ठौड़ = स्थान । ऊखाणो = कहावत ।

भावार्थ—मारवाड़ी पराई धरती में मारनेवाले हैं और युद्ध में भाग लेते हैं, यह कहावत जयमल ने चित्तौड़ के लिये बलि होकर प्रत्यक्ष कर दी ।

६३—पाधर = सीधा । बिढे = लड़े । इचरज = आश्चर्य ।

भावार्थ—सीधा अकबर से जाकर भिड़नेवाला श्रेष्ठ वीर पत्ता यदि चित्तौड़ में गर्जना करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

६४—ओ = यह । पातल = पत्ता । कमधज्ज = राठौड़ । घर कज्ज = घर के काम । परकज्ज = पराए के काम ।

भावार्थ—पत्ता सीसोदिया और जयमल राठौड़ है । एक तो अपने घर (मातृभूमि) के लिये और दूसरा पराये (स्वामी) के लिये लड़ता है ।

६५—ततबीर = तदबीर, उपाय । ओलियो = सिद्ध ।

॥ बड़ा दोहा ॥

रोपी अकबर राड़, कोट झड़ै नह कांगरे।
पटके हाथळ सीह पण, बादळ व्है नह बिगाड़ ॥६६॥
राणा रा धिन रावतां, गाढ़ां आदर गाढ़।
पायो अकबर पानड़ैं, चित्रकोट जळ चाढ़ ॥६७॥
कोट विणायो मोरियां साह हमाऊँ नंद।
तोड़ करे नहिं टूट ही, वीर मदत जग वंद ॥६८॥
जों होता रछपाळ जग, यां सुहड़ांरा थाट।
पांख गिरां गिरवाणपत, किण विध सकतो काट ॥६९॥

भावार्थ—अकबर खुद सिद्ध है जोड़-तोड़ तथा तदवीर में भी कुछ कसर नहीं रखता। फिर भी गढ़ उसके हाथ नहीं आता।

६६—रोपी = ठानी। राड़ = लड़ाई। हाथळ = पंजा। पण = परन्तु। व्है = होते हैं। बिगाड़ = नुक़सान।

भावार्थ—अकबर ने लड़ाई ठान ली पर कोट या कंगूरा नहीं टूटा। सिंह पंजा मारता है, लेकिन बादलों का कुछ नहीं बिगड़ता।

६७—धिन = धन्य। आदर गाढ़ = बहुत आदर है। रावतां = उमराव। पानड़ैं = पत्ते में।

भावार्थ—राणा के उमरावों को धन्य है जिनका गढ़ के प्रति पूर्ण आदर है। उन्होंने चित्तौड़ को जल चढ़ाकर अकबर को पत्ते में पिलाया (खूब छकाया)।

६८—कोट—गढ़। विणायो = बनाया। मोरियां = मौर्य्य वंशियों ने। साह हमाऊँ नंद = अकबर। मदत = सहायता, मदद।

भावार्थ—मौर्य्य वंशियों ने इस गढ़ को बनवाया। हुमायूं का पुत्र अकबर दाँव-पेच करता है, परन्तु टूटता नहीं; क्योंकि जगत् प्रसिद्ध वीर उसकी मदद पर हैं।

६९—रछपाल = रत्ता करनेवाले। सुहडां = सुभटों के। थाट = ठट्ट, समूह। पांख गिरां = पर्वतों के पंख। गिरवाणपत = इंद्र। किण विध = किस प्रकार।

गुण भूषण भुरजालरो, जस मै दुत जागंत ।
वांकीदास बणावियो, वांचे नर बुधवंत ॥७०॥

(भुरजाल भूषण)

—:o:—

भावार्थ—यदि इन जैसे वीरों के समूह संसार की रक्षा करने वाले होते तो इन्द्र पहाड़ों के पर कैसे काट सकता था।

७०—भुरजाल रो=गढ़ की। दुत=कांति। जस=यश। बुधवंत =बुद्धिमान्।

भावार्थ—गुणों से विभूषित गढ़ की यशमयी कांति से प्रकाशमान इस 'भुरजाल भूषण' को वांकीदास ने बनाया; बुद्धिमान मनुष्य इसे पढ़ेंगे।

कविराजा सूर्य्यमल

कवि-कुलाभरण महाकवि सूर्य्यमल का जन्म चारणों की मिश्रण शाखा के एक प्रतिष्ठित कुल में सं० १८७२ में बूँदी में हुआ था। इनके पिता का नाम चंडीदान और पितामह का बदनसिंह था। ये दोनों बूँदी दरबार के प्रधान कवियों में से थे। सूर्य्यमल ने छह विवाह किये थे पर इनके कोई संतान नहीं हुई जिससे इन्होंने मुरारिदान जी को अपनी गोद ले लिया था। अपने पिता एवं स्त्रियों के विषय में सूर्य्यमल ने स्वयं ही वंशभास्कर में लिखा है :—

बदन सुकवि सुत कवि मुकुट, अमर गिरा मतिमान।
पिंगल डिंगल पटु भये, धुरंधर चंडीदान॥
दोला सुरजा विजयका, जसारु पुष्पा नाम।
पुनि गोविन्दा षट्प्रिया, अर्कमल्ल कवि वाम॥

सूर्य्यमल बड़े विलासी, मद्यप, तुनुकमिज़ाज एवं स्वतंत्र प्रकृति के पुरुष थे और अपने व्यवहार में इतने रूखे थे कि लोग इनके पास जाना भी पसंद नहीं करते थे। ये दिन रात शराब के नशे में चूर रहते थे और इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि बिना मदिरा-पान के भी कोई मनुष्य ठीक तरह से अपना काम कर सकता है। प्रवाद है कि जिस समय इनकी एक स्त्री का देहान्त हुआ उस समय भी ये शराब पीकर उसकी दाह-क्रिया के लिए घर से बाहर निकले थे। सूर्य्यमल का जीवन ही शराब पर निर्भर था। पर फिर भी नशे में ये इतने उन्मत्त नहीं हो जाते थे कि शरीर की सुधबुध ही न रहे। इतना ही नहीं, नशे की हालत में इनकी कल्पनाशक्ति और भी सजग हो उठती थी और दो आदमी जो इनके दाहिनी तथा बाईं तरफ़ बैठे रहते बड़ी कठिनता से इनकी उस समय की कविताओं को लिख पाते थे। सहृदय कवि होने के अतिरिक्त सूर्य्यमल उच्चकोटि के विद्वान भी थे और संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पिंगल, डिंगल आदि कई भाषाएँ जानते थे। इनके पुत्र

मुरारिदान ने अपने रचे डिंगल कोष के प्रारम्भ में इनकी विद्वत्ता एवं ज्ञान गरिमा की बड़ी प्रशंसा की है :—

देखो चंडीदानरा, सुतरो सुजस सुजाण।
दोहा मुरमादे दुरस, बदियो अवे बखाण॥

चउदह विद्या चातुरी, चोसठ कला चवात।
मिमांसा माम्मट बळे, पातंजल हि पढात॥

न्याय उदधि खेवट निरख, बैयाकरण बिसेस।
पालकाप्य नाकुल प्रभण, साकुन सास्त्र असेस॥

इनका देहान्त वि० सं० १९२० में बूँदी में हुआ।

सूर्य्यमल ने वंशभास्कर, बलवंत विलास, छंदो मयूख और वीर सप्तशती ये चार ग्रंथ बनाये। इनके सिवा इनके लिखे फुटकर कवित्त-सवैये भी बहुत से मिलते हैं। ग्रन्थों में वंशभास्कार इनकी सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रिय रचना है। बूँदी-नरेश महाराव राजा रामसिंह जी (सं० १८७८-१९४५) की आज्ञा से इन्होंने वि० सं० १८९७ में इस ग्रन्थ को लिखा था। इसमें प्रधानतः बूँदी राज्य का इतिहास वर्णित है, पर प्रसंगवश राजस्थान की दूसरी रियासतों का इतिहास भी थोड़ा बहुत आ गया है। कवि कृष्णसिंह जी बारहठ ने इसकी टीका की है और टीका सहित ४३६८ पृष्ठों में समस्त ग्रंथ छपकर तैयार हुआ है। वंशभास्कर की भाषा के सम्बन्ध में थोड़ा सा मतभेद है। कुछ लोग इसकी भाषा को डिंगल और कुछ पिंगल बतलाते हैं। परन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो वंशभास्कर की भाषा न तो शुद्ध डिंगल है, न शुद्ध पिंगल। वह चारणों की खिचड़ी भाषा है जिसमें संस्कृत, प्राकृत, पैशाची, अपभ्रंश, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है और क्रियापद, संयोजक-शब्द, कारक चिह्नादि भी डिंगल और पिंगल दोनों के मिलते हैं।

वंशभास्कर की भाषा कठिन भी बहुत है। सूर्य्यमल ने कहीं कहीं तो अपने निज के गढ़े हुए शब्द रख दिये हैं और कहीं कहीं ऐसे अप्रचलित एवं क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है कि किसी साधारण योग्यता वाले पाठक का वंशभास्कर को समझना तो दूर रहा उसे हाथ में लेने का साहस भी कम होता है। इनकी क्लिष्ट भाषा का थोड़ा सा नमूना देखिये :—

कट्टिल[1] कर्णिकावली, भटा हृदावली[2] भये,
अरिष्ठ[3] के अपष्ठ[4] वृन्द, क्लोम[5] कन्दउन्नये ॥
बनै अरी पलास[6] कान अन्दु[7] नाग वल्लरी,
कलेज पीलुपर्णिका[8] कसेर तोर इक्करी ॥

चारण कवियों का तथा वंशभास्कर के इतर प्रशंसकों का कहना है कि सूर्य्यमल जैसा प्रतिभावान कवि न तो हुआ है न होगा। वंशभास्कर के साथ ही वे सच्ची कविता की इति श्री समझते हैं। चारण लोगों का यह मत कुछ लोगों को अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत हुआ होगा और कुछ अंशों में वह अत्युक्तिपूर्ण है भी। परन्तु इतना तो फिर भी कहना पड़ेगा कि वीर रस का जैसा भावानुरंजित और ओजपूर्ण वर्णन सूर्य्यमल ने किया है वैसा हिन्दी के तो किसी दूसरे कवि की रचना में देखने को अभी तक नहीं मिला। उदाहरण-स्वरूप भूषण ही को लीजिये। ये वीररस के सर्वोच्च कवि माने जाते हैं। भूषण राष्ट्रीय कवि हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। ये हिन्दू धर्म के उपासक हैं, इसमें कोई मत-भेद नहीं। उनकी कविता में औरङ्गज़ेव के अत्याचारों से प्रताड़ित हिन्दू जाति के हाहाकार की प्रतिध्वनि है, इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। परन्तु इतना होते हुए भी कहाँ सूर्य्यमल और कहाँ भूषण! दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। वीर-वीराङ्गनाओं के हृदयस्थ भावों का विश्लेषण और काव्यमय निरूपण भूषण की कविता में कहाँ, जिसके दर्शन सूर्य्यमल की रचना में पग पग पर होते हैं।

---

१ सूँड़ के अग्र भागों की पंक्ति ही करेलों की पंक्ति है।

२ हृदयों की पंक्ति बैंगन हैं।

३ लहसुन के समान।

४ अंकुश का अग्रभाग।

५ तिल्ल ही जमीकंद हैं।

६ हाथियों के कान अरबी के पत्ते हैं।

७ जंजीर नागरबेलें हैं।

८ कलेजे ही दाख की बेलें हैं और हाथी की पीठ की लंबी हड्डी तोरई है।

किसी राजपूत महिला का पति शत्रुओं से लड़ने के लिये रणभूमि में गया हुआ है। वह उसी की चिंता में मग्न है, पर यह नहीं चाहती कि उसका पति भागकर घर आ जाय। जिससे सती होने की उसकी लालसा पर पानी फिर जाय और संसार के सामने उसे लज्जित होना पड़े। इतने में उसे सूचना मिलती है कि उसका पति रणक्षेत्र की तरफ़ से भागा हुआ घर की ओर आ रहा है। अब उसके दुःख का क्या ठिकाना! इतने में पति भी आ पहुँचता है। कायर पति को अपनी आँखों के सामने खड़ा देख एक लंबी साँस खींचकर वह कहती है :—

की घर आवे थें कियौ, हणियाँ वळती हाय।
धण थारे घण नेहड़ै, लीधो बेग बुलाय ॥१॥

पूतां रे बेटा थिया, घर में बधियो जाळ।
अब तो छोड़ो भागणों, कंत लुभायो काळ ॥२॥

धव जीवे भव खोवियो, मो मन मरियो आज।
मौनूँ ओछे कँचुवै, हाथ दिखाताँ लाज ॥३॥

यो गहणां ये बेस अब कीजे धारण कंत।
हूँ जौगण किण कामरी, चूड़ा खरच मिटंत ॥४॥

कंत सुपेती देखतां, अब की जीवण आस।
मो थण रहणै हाथ हूँ, घाते मुँहड़े घास ॥५॥[1]

---

१ अर्थ—हाय, घर आकर तुमने क्या किया? यदि मारे जाते तो मैं भी तुम्हारे साथ सती होती। इस पर पति उत्तर देता है—प्रिये, तेरा प्रेमाधिक्य ही तो मुझे शीघ्र बुला लाया ॥१॥

पुत्रों के भी पुत्र होकर अब घर में बहुत जाल बढ़ गया है और काल तुम्हारी अवस्था पर लुभा रहा है। कंत! अब तो युद्ध से भागना छोड़ दो ॥२॥

हे प्रीतम! इस प्रकार से जीकर तो तुमने सचमुच जन्म खो दिया। तुम्हारी यह दशा देखकर आज मेरा तो मन ही मर गया। अब तो इस (सौभाग्य चिन्ह) ओछी कँचुकी में हाथ दिखाते हुए भी मुझे लज्जा मालूम होती है ॥३॥

कंत! यह मेरा वेश और ये मेरे आभूषण अब आप ही धारण कीजिये। मैं तो योगिनी हो चली। अब आपके किस

हथळेवे ही मूठ किण, हाथ विळग्गा माय ।
लाखां वातां हेकलो, चूड़ौ मो न लजाय ॥५॥
समळी और निसंक भख, जंबुक राह म जाह ।
पण धण रौ किम पेख ही, नयण विणट्ठा नाह ॥६॥
काय कलाळी छळ कियो, सेज गुमावण रंग ।
फूल दुबारै छाकियौ, चींतै चौगुण जंग ॥७॥
कर पुचकारे धण कहे, जाण धणी री जैत ।
नीरा जण वाधावियौ, हूँ बळिहार कुमैत ॥८॥

५—विळग्गा = लगने से, चुभने से । माय = मेरे । हेकलो = अकेला ।

भावार्थ—पाणिग्रहण के अवसर पर उनकी हथेली पर के तलवार की मूठ के निशान मेरे हाथ में चुभने से हे माता ! मैं समझ गई कि युद्ध में अकेले हो जाने पर भी वे मेरे चूड़े को नहीं लजावेंगे ।

६—समळी = चील । जंबुक = गीदड़ । म = मत । जाह = जा । पण = प्रण । धण = पत्नी । विणट्ठा = बिना ।

भावार्थ—हे चील ! दूसरे अंगों को तो तू भले ही निडर होकर खा, परन्तु शृगाल के मार्ग का अनुकरण मत कर (आँखें मत निकाल) । क्योंकि यदि तू प्राणनाथ को नेत्र-विहीन कर देगी तो वे अपनी पत्नी के सती होने के प्रण-पालन को कैसे देखेंगे ।

७—कलाळी = कलालिन । गुमावण = खोनेवाला, खराब करने वाला । रंग = मजा । दुबारै = बढ़िया शराब । चींतै = याद करता है ।

भावार्थ—हे कलालिन ! तू ने यह क्या कपट किया कि रति-शय्या का मजा ही बिगाड़ दिया । वे तो तेरे बढ़िया शराब से मस्त होकर भी युद्ध का ही चौगुना स्मरण करते हैं ।

८—जैत = जीत । कुमैत = (तु० कुमेत) घोड़े का एक रंग जो स्याही लिये लाल होता है । यहाँ इस रंग के घोड़े से तात्पर्य्य है । धणी = पति ।

भूल न दीजै ठाकुरां, पावक माथे पाव।
राख रहीजे दाभियाँ, तियां धरीजै चाव ॥९॥
नींदाणो गिण टेकलौ, पुळौ न छेड़ौ पीव।
जाय पुजावौ पाव ही, चूड़ौ धण चिरजीव ॥१०॥
असिधावण तो पीव पर, वारी वार अनेक।
रण झाटकतां कंत रे, लगै न झाटक एक ॥११॥

भावार्थ—अपने पति की विजय हुई सुनकर पत्नी पति के घोड़े की आरती उतार कर और उसे अपने हाथ से थपथपा कर कहती है कि हे कुम्मैत! तुझ पर बलिहारी हूँ।

९—पाव=पाँव, पैर। दाभियाँ=दाभने से, छूने से। चाव=उमंग।

भावार्थ—(सती की उक्ति है) हे सरदारो! आप भूलकर भी आग पर पैर मत रख देना। इसके छू जाने से तो फिर राख ही बचती है और इसका आलिंगन करने के लिये स्त्रियाँ ही लालायित रहती हैं।

१०—नींदाणो=निद्राग्रस्त। गिण=समझ कर। टेकलौ=हठी। पुळौ=भाग जाओ।

भावार्थ—तुम लोग यह समझ कर कि मेरे हठी पति निद्रावश हैं, भाग जाओ। उन्हें मत छेड़ो। तुम्हारे चले जाने से तुम्हारी स्त्रियों का चूड़ा (सुहाग) चिरजीवी होकर सम्मान प्राप्त करेगा।

विशेष—राजस्थान में सधवा स्त्रियाँ अपने दोनों हाथों में हाथी दाँत आदि की बनी हुई चूड़ियाँ पहनती हैं। दोनों हाथों की चूड़ियों के सेट को चूड़ा कहते हैं। यह चूड़ा स्त्रियों के सौभाग्य का चिह्न है और सधवापन का प्रतीक माना जाता है।

११—असिधावण=सिकलीगरनी। झाटकतां=वार करते हुए, प्रहार करते हुए। झाटक=झटका।

भावार्थ—हे सिकलीगरनी! मैं तेरे पति पर अनेक बार न्योछावर हूँ कि उसने तलवार की धार इतनी तेज़ कर दी

साथण ढोल सुहावणो, देणो मो सह दाह।
उरसां खेती बीज धर, रजवट उलटी राह ॥१२॥
निधड़क सूतौ केहरी, तौ भी विमुहा पाव।
गज-गैंडा धीर न धरै, वज्र पड़ै वघवाव ॥१३॥
आज घरे सासू कहै, हरख अचाणक काय।
बहू बळेवा हूलसै, पूत मरेवा जाय ॥१४॥
देख सहेली मो धणी, अजको बाग उठाय।
मद प्यालां जिम एकलौ, फौजां पीवत जाय ॥१५॥

कि जिससे युद्धमें प्रहार करते वक्त मेरे पति को एक भी झटका नहीं लगा।

१२—साथण = साथिन, सखी। मो = मेरे। सह = साथ। दाह = जलने के। मो सह दाह = मेरे जलने के साथ, सती होने के समय। उरसां = आकाश, स्वर्ग। रजवट = रजपूती, क्षात्र-धर्म। राह = रीति।

भावार्थ—हे सखी ! मेरे सती होने के समय तू सुहावने ढोल बजवाना। तू तो क्षात्रधर्म की इस उलटी रीति को जानती है कि जिसमें बीज बोया जाता है पृथ्वी पर और खेती फलती है आकाश में (स्वर्ग में)।

१३—विमुहा = पीछे की तरफ। वघवाव = व्याघ्र-गंध, सिंह के शरीर की गंध।

भावार्थ—सिंह गहरी नींद में सोया हुआ है तो भी हाथी और गैंडे धैर्य धारण नहीं करते। उनके पाँव पीछे ही पड़ते हैं। उन्हें व्याघ्र-गंध क्या आती है, मानों उन पर वज्र पड़ रहा है।

१४—बळेवा = जलने के लिये, सती होने के लिये। हूलसै = उमंगित हो रही है। मरेवा = मरने के लिये।

भावार्थ—घर पर सास कहती है कि आज अचानक इतना हर्ष किस बात पर हो रहा है ? (शायद उसे मालूम नहीं है कि) उसका पुत्र मरने को जा रहा है और पुत्र-वधू जलने को (सती होने को) उमंगित हो रही है।

१५—अजको = उद्धत, उद्दंड।

पग पाछा छाती धड़क, काळौ पीळौ दीह ।
नैण मिचै साम्हो सुणै, कवण हकाळै सीह ॥१६॥
नायण आज न मांड, पग, काल सुणीजै जंग ।
धारां लागीजै धणी, तौ दीजै घण रंग ॥१७॥
गीध कळेजौ चील्ह उर कंका अंत विलाय ।
तौ भी सौ धक कंतरी, मूंछां भूंह मिलाय ॥१८॥
ऊभी गोख अवेखियौ, पेलां रौ दळ सेर ।
पड़ियौ धव सुणियौ नहीं, लीधौ धण नाळेर ॥१९॥

भावार्थ—हे सखी ! मेरे उद्धत पति को देख । घोड़े की वाग उठाकर वह अकेला ही इस तरह शत्रु-सैन्य का शोषण कर रहा है, जिस तरह कोई शराबी शराब के प्याले को पी रहा हो ।

१६—दीह = दिन । हकाळै = ललकारे ।

भावार्थ—जिस सिंह को सामने सुनकर ही दिन काला-पीला दिखाई देने लगता है, पैर पीछे पड़ने लगते हैं, आँखें मिच जाती हैं और छाती धड़कने लगती है, उसे ललकारने का साहस कौन कर सकता है ?

१७—मांडना = चित्रित करना, महावर आदि से रंगना । घण = खूब ।

भावार्थ—हे नाइन ! आज मेरे पाँवों को मत रंग । कल युद्ध सुना जाता है । यदि पति धारा-तीर्थ में स्नान करें (तलवार घाट उतरें) तो फिर (सती होने के समय) खूब रंग देना ।

१८—कंक = कंक पक्षी, ढीच । अंत विलाय = आँतों को विलीन कर दिया । धक = हिम्मत । सौ = वह ।

भावार्थ—गिद्ध ने कलेजा, चील ने हृदय और कंक पक्षी ने आँतों को विलीन कर दिया है तो भी कंत का वह साहस है कि उसकी मूँछें भौंहों से मिल रही हैं ।

१९—गोख = गवाक्ष, झरोखा । अवेखियौ = देखा । पेलां रो = दूसरों का, विपक्षियों का । सेर = प्रबल । पड़ियौ = गिर गया, मारा गया । धव = पति । लीधौ = ले लिया । धण = पत्नी ।

हूँ पाछे आगे हुवे, आणी नाह घरेह
जे वाल्ही धण जीव हूँ, आगे मूझ करेह ॥२०॥
कंत भलां घर आविया, पहरीजे मो वेस।
अब धण लाजी चूड़ियां, भव दूजै भेटेस ॥२१॥
दरजण लंबी अंग्रिआं, आणीजै अब मूझ।
तव टोटे मोनूं दया, दूणं सिवाई तूझ ॥२२॥

भावार्थ—झरोखे में खड़ी हुई ने देखा कि विपत्तियों का दल भारी है। अतएव पति के मरने का समाचार न सुनकर भी इसे अवश्य भावी मान कर पत्नी ने सती होने के लिये नारियल हाथ में ले लिया।

२०—आणी = लाये। घरेह = घर पर, घर को। वाल्ही धण = प्यारी पत्नी।

भावार्थ—(विवाह के समय) स्वामी स्वयं आगे होकर और मुझे पीछे करके अपने घर पर लाये थे। लेकिन (उनकी मृत्यु के बाद) यदि उनकी प्रिय पत्नी (मैं) जीवित रही तो (सती होने के समय) उन्हें मुझे आगे करना होगा। (प्राचीन काल में जब कोई स्त्री अपने पति के साथ जलने के लिये श्मशान में जाती थी तब वह अपने पति की अर्थी के आगे रहती थी)।

२१—भावार्थ—कंत! भले घर पधारे। लीजिये यह मेरा वेश धारण कर लीजिये। अब इस लज्जित चूड़ियोंवाली पत्नी से तो दूसरे ही जन्म में भेंट कर सकेंगे।

२२—अंगियां = कुरतियाँ। दूणी = दुगुनी। आणीजै = लाना।

भावार्थ—हे दर्जिन! अब मेरे लिये लंबी कुरतियें लाया करना। मेरे सधवापन की पोशाकें न सीने से जो तुझे टोटा रहेगा, उसकी पूर्ति मैं तुझे दूनी सिलाई देकर करूँगी।

विशेष—राजस्थान में सधवा स्त्रियाँ कुहनी तक की आस्तीनोंवाली कंचुकी-कुरतियाँ पहनती हैं और विधवाएँ लंबी आस्तीनोंवाली। वीरांगना के कहने का अभिप्राय यह है कि मेरे कायर पति रणभूमि से भाग कर घर चले आये

मणिहारी जारी सखी, अब न हवेली आव।
पीव मुवा घर आविया, विधवां किसा बणाव ॥२३॥
झूरै इम रङ्गरेजणी, कूड़ा ठाकुर काय।
बसन सती धण रङ्गतां, दीधी आस छुड़ाय ॥२४॥
गंधण कूकी रे गजब, भूंड़ा आगम भौण।
बळण कढ़ायो अतर धण, मुहँगो लेसी कौण ॥२५॥

हैं इसलिये मैं अपने आप को विधवा समझती हूँ। अतएव मेरी पोशाक भी विधवाओं जैसी होनी चाहिये। अब रही बात यह कि इस तरह की सादी और विना तड़क-झड़कवाली पोशाक के सीने से तुझे कम सिलाई मिलेगी और तुझे घाटा रहेगा। पर इस घाटे की पूर्ति मैं तुझे दूनी सिलाई देकर करूँगी।

२३—मुवा = मरे हुए। बणाव = शृंगार।

भावार्थ—हे सखी मनिहारिन! अब से मेरी हवेली पर मत आया कर। मृतक के समान (कायर) पति घर भाग आये हैं। विधवाओं को शृंगार कैसा?

२४—झूरै = रोती है। इम = इस तरह। रंगरेजणी = रंगरेजिन। कूड़ा = निकम्मा। काय = क्या।

भावार्थ—रङ्गरेजिन रोती है कि हे निकम्मे ठाकुर! युद्ध से भाग कर यह तूने क्या गजब किया। तेरी सती पत्नी के लिये सुंदर वस्त्र रँगने की मेरी आशा पर तूने पानी फेर दिया।

२५—गंधण = गंधिन। कूकी = चिल्लाई। भूंड़ा = अशुभ, खराब। भौण = भवन, घर। बळण = जलने के लिये, सती होने के वक्त लगाने के लिये। कढ़ायो = निकलवाया। अतर = इत्र। लेसी = लेगा।

भावार्थ—गंधिन चिल्ला उठी कि गजब हो गया। उसका (रण से भाग कर) घर आ जाना मेरे लिये तो बड़ा ही खराब सिद्ध हुआ। उसकी पत्नी ने सती होने के समय लगाने के लिये जो महँगा इत्र निकलवाया था, उसे अब कौन खरीदेगा।

सोनारी झूरै कहै, रे ठाकुर कुळ खोय ।
मूझ घड़ाई खोवणा, तूझ मड़ाई होय ॥२६॥
हूँ बलिहारी राणियां, भ्रूण सिखावण भाव ।
नाळो वाढ़ण री छुरी, झपटै जणियो साव ॥२७॥
हूँ बळिहारी राणियां, सांचा गरभ सिखाय ।
जाचां हंदै तापणैं, हरखै धी द्रग लाय ॥२८॥
कंत लखीजै दोहि कुळ, नथी फिरंती छांह ।
मुड़ियां मिळसी गींदवो, वळे न धण री बांह ॥२६॥
हेली की अचरज कहूँ, कंत परा बलिहार ।
घर में देखूं दोय कर, रण में होय हजार ॥३०॥

२६—झूरै कहै = रोकर कहती है । कुळ खोय = कुळ नाशक
मूँझ घड़ाई खोवणा = मेरी वड़ाई खोने वाले । मूझ = मेरी
तूझ = तेरा । मड़ाई = नाश ।
भावार्थ—सुनारिन रोती हुई कहती है कि मेरी जीवि
को नष्ट करनेवाले रे कुलनाशक ठाकुर ! तेरा नाश हो ।
२७—भ्रूण = गर्भ । भाव = वीरता के भाव । वाढ़ण री = काटने की
भावार्थ—मैं उन रानियों पर निछावर हूँ जो गर्भ में
उन वीर भावों की शिक्षा देती हैं कि जन्म लेते ही बाल
नाल काटने की छुरी को लेने के लिये झपटता है ।
२८—सांच = सच्ची, दृढ़ । जाचां = जच्चा, प्रसूता । हंदै = के ।
तापणें = तापने के लिये (अंगीठी) । धी = पुत्री ।
भावार्थ—मैं उन रानियों पर बलिहारी हूँ जो गर्भ में ही (बालिकाओं को) ऐसी दृढ़ शिक्षा देती हैं कि प्रसूतिका-गृह में अपने तापने की अंगीठी की अग्नि को एकटक देखकर पुत्री हर्षित होती है
२९—मुड़ियां = मुड़ने पर । गींदवो = तकिया । वळे = फिर ।
भावार्थ—हे कंत ! अपने और मेरे दोनों के कुलों को देखना न कि अपनी फिरती हुई छाया को । यदि आप युद्ध से मुड़ आये तो सिरहाने के लिए तकिया भले ही मिल जाय, पर पत्नी की भुजा तो फिर नहीं मिलेगी ।
३०—हेली = हे अली ।

संड हुआ जीवै जिके, सदा न हेरै साथ।
सीहां रै गळ साकळै वे भड़ घालै हाथ ॥३१॥
धीर पिया सूतौ धणी, कुरळै चकवी काय।
देखीजे मुख दीहरे, सुख दो जाम सिवाय ॥३२॥
भोला की डर भागियौ, अंत न पहुड़ै ऐण।
बीजी दीठां कुळ बहू, नीचा करसी नैण ॥३३॥
ढोल बरज सब भेज घर, धर नाळेर सुधाम।
घावां कंत पधारिया, पांवां हूंत प्रणाम ॥३४॥

भावार्थ—हे सखी! इस आश्चर्य्य की कथा तुझसे क्या कहूँ। मैं तो अपने कंत पर बलिहारी हूँ। मैं घर में जिन हाथों को दो देखती हूँ, वे रण में हज़ार हो जाते हैं।

३१—जिके=वे। साकळै=श्रृंखला, जंजीर। भड़=भट, शूरवीर। घालै=डालते हैं।

भावार्थ—वे ही वीर सिंहों के गले में जंजीर डालने को हाथ लगा सकते हैं जो कभी साथ नहीं ढूँढ़ते और सदा अपना शिर हथेली पर लिये फिरते हैं।

३२—कुरळै=चीख़ती है। काय=क्या॥

भावार्थ—हे चकवी! इतनी क्यों चीख़ती है? बहुत ही धैर्य्य दिलाने पर पति ज़रा सोये हैं। सूर्य्योदय होने पर तू दो पहर अधिक सुख देख लेना। (क्योंकि मेरे पति का युद्ध देखने को सूर्य्य भगवान दोपहर तक अपना रथ रोक लेंगे।)

३३—भोळा=मूर्ख। अंत=मृत्यु। पहुड़ै=पहुँचेगी। ऐण=घर।

भावार्थ—रे मूर्ख! किस डर से तू भाग आया? क्या तू यह समझता है कि मृत्यु घर तक नहीं पहुँचेगी? यहाँ यह सिवाय होगा कि तेरे कारण वह बेचारी कुलवधू (तेरी पत्नी) लज्जा से नीची आँखें करेगी।

३४—बरज=बंद कर, रोक दे। घावां=घायल।

भावार्थ—(हे सखी!) ढोल का बजाना बंद कर, सब को अपने-अपने घर भेज दे और सती होने के नारियल को

रण खेती रजपूत री, वीर न भूलै बाळ।
बारह बरसां बापरौ, लहै बैर लंकाळ ॥३५॥
मन सोचे जाणै मती, मो नै बाळक माय।
बैर पराया बाहुड़ै, जठै न धर रा जाय ॥३६॥
औरां की फळ जागियां, लड़णौ जाग लंकाळ।
गुड़ै धणीचां गाजणा, तो माथे त्रंबाळ ॥३७॥
अठै सुजस प्रभुता उठै, अवसर मरियां आय।
मरणौ घर रै माझियां, जम नरकां ले जाय ॥३८॥
बंब सुणायौ बीन्द नूं, पेसंतां घर आय।
चंचल साम्है चालियौ, अंचल बंध छुड़ाय ॥३९॥

भी यथास्थान रख दें। घायल कंत घर पधार आये हैं। उनके चरणों में प्रणाम।

३५—बाळ=बालक। लहै=लेते हैं। लंकाळ=सिंह।

भावार्थ—युद्ध तो राजपूत की खेती (व्यवसाय) है इसे वीर बालक नहीं भूलते। वे सिंह बारह वर्ष की उम्र में ही अपने बाप के बैर का बदला लेते हैं।

३६—हे माता! मुझे बालक समझ कर मन में चिंता मत करना। जहाँ पराये बैर भी ले लिये जाते हैं, वहाँ घर के क्या जाने पावेंगे?

३७—गुड़ै=बज रहे हैं। लंकाळ=सिंह। चां=के। गाजणा=गरजने वाले। तो माथे=तेरे मस्तक पर, तेरे बल पर। त्रंबाळ=नगाड़े।

भावार्थ—हे सिंह! औरों के जागने से क्या लाभ है? तू जाग। स्वामी के गरजनेवाले नगाड़े तेरे ही बल पर तो बज रहे हैं।

३८—अठै=यहाँ, इस लोक में। उठै=वहाँ, परलोक में। माझियाँ=में।

भावार्थ—आये मौके पर मरनेवालों को इस लोक में सुयश और परलोक में प्रभुत्व प्राप्त होता है। पर जो घर में मरते हैं उनको यमराज नरक में ले जाता है।

३९—बंब=नगाड़ा। सुणायो=सुनाई दिया। बीन्द नूँ=वर को। पेसंता=घुसते हुए। चंचळ=अश्व।

पहल मिळे धण पूछियो, किण कीधा किण हाथ।
बीजल साहे बोलियो, इण डाकण भू आथ ॥४०॥
ढोल सुणंतां मंगली, मूंछाँ भूंह चढंत।
चँवरी ही पहचाणियो, कुंवरी मरणौ कंत ॥४१॥
गीव न मोड़े देखणो, करणो शत्रु सिराह।
परणंतां धण पेखियौ, ओछी ऊमर नाह ॥४२॥
पेटी मोड़ छिपावियां, जाणूं घाव न जीव।
हेली दिवसां पाहुणें, पड़वै दीठौ पीव ॥४३॥

भावार्थ—विवाह करके आने पर दूल्हे को घर में घुसते-घुसते युद्ध का नगाड़ा सुनाई दिया। वह उसे सुनते ही दुलहिन के अंचल से गाँठ छुड़ा कर अपने अश्व की ओर बढ़ चला।

४०—मिळे = मिलन। किण = किसने। इण = इस। आथ = (सं० अर्थ) = लिये।

भावार्थ—पत्नी ने प्रथम मिलन के समय पूछा कि हे नाथ! हाथ में ये कठोर चिन्ह किसने किये? तलवार लेकर पति बोला कि प्रिये! इस डाकिनी ने और पृथ्वी के लिये।

४१—मंगळी = मांगलिक। चँवरी = विवाह मंडप। कँवरी = कुमारी।

भावार्थ—विवाह समय मांगलिक ढोल सुनकर वर की मूँछें भौंहों से जा लगी हैं, यह देख कर कुमारी ने विवाह मंडप में ही जान लिया कि कंत मरण-प्रेमी है।

४२—सिराह = सराहना। परणंता = विवाह के समय।

भावार्थ—विना गर्दन मोड़े देखना और वीर हो तो शत्रु की भी सराहना करना, इन दो बातों से विवाह के समय ही पत्नी ने समझ लिया कि पति की आयु थोड़ी है।

४३—पेटी = संदूक। मौड़ = सेहरा, विवाह के समय वर के सिर पर बाँधने का मौर। पड़वै = शयन-गृह में।

भावार्थ—शयनागार में संदूक में उनका सेहरा रखते समय जो उनके घाव मैंने देखे, उनसे ही, हे सखी! मैंने ताड़

बिण माथै वाढै दळां, पोढै करज उतार।
तिण सूरां रौ नाम लै, भड़ बांधै तरवार ॥४४॥
भड़ सोही पहलां पड़ै, चील्ह बिलग्गा चैंक।
नैण बचावै नाहरा, आप कळेजो फैंक ॥४५॥
बळ खांधे जण जण वहै, कस बांधै करवाळ।
परख भड़ां अर कायरां, त्रह त्रहियां त्रंबाळ ॥४६॥
बळण अकेली किम बणै, जोवै संसय जीव।
वै दिन जो कायर बणौ, पीहर भेजो पीव ॥४७॥

लिया कि पति (थोड़े) दिनों के ही पाहुने हैं। अर्थात् शीघ्र ही कहीं न कहीं युद्ध में मारे जायँगे।)

४४—बिण = बिना। वाढै = काटता है। पोढै = धराशायी होता है। करज = कर्जा, ऋण।

भावार्थ—जो बिना शिर ही सेनाओं को काट डालता है और अपने ऋण को चुकाकर धराशायी होता है, उस शूरवीर का नाम लेकर योद्धागण तलवार बाँधा करते हैं।

४५—सोही = वही। बिलग्गा = स्पर्श, सामीप्य। चैंक = चौंक कर।

भावार्थ—योद्धा वही है जो सब से पहले मरता है और युद्ध-क्षेत्र में चील की चोंच के स्पर्श से चौंककर अपना कलेजा फेंक स्वामी के नेत्रों की रक्षा करता है।

४६—खांधै = कंधों पर। वहै = चलते हैं। करवाळ = तलवार। त्रंबाळ = नगाड़ा। त्रय त्रहियां = बजने पर। जण = मानो।

भावार्थ—सब कोई तलवार कसकर बाँधते हैं और ऐसी अकड़ से चलते हैं मानों सारी शक्ति उन्हीं के कंधों पर है। परन्तु शूर और कायर की परीक्षा उस वक्त होती है, जिस वक्त युद्ध के नगाड़े टहटहाते हैं।

४७—बळण = जलना। किम वणौ = कैसे हो सकता है।

भावार्थ—हे पति! मेरे जी में यह संशय है कि उस दिन युद्ध के अवसर पर यदि आप कायर हो गये तो मैं अकेली कैसे जल सकूँगी। यदि ऐसी संभावना हो तो मुझे अभी से ही पीहर भेज दीजिये।

सीह न बाजौ ठाकुरां, दीन गुजारौ दीह।
हाथळ पाड़ै हाथियां, सौ भड़ बाजै सीह ॥४८॥
कायर री धण यूं कहै, छानै कंत छिपाय।
सीस बिकै जिण देसड़ै, सांई सौ न दिखाय ॥४९॥
नराँ न ठीणौ नारियां, ईखौ संगत एह।
सूरां घर सूरी महळ, कायर कायर गेह ॥५०॥
सखी नथी धव जीवतां, अरियां पायौ चैन।
बळतां लीधो गोद में, तौ भी मूंछ मुड़ैन ॥५१॥
इळा न देणी आपरी, हालरिया हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई मांय ॥५२॥

४८—बाजौ = कहलाओ। दीह = दीन, समय। हाथळ = पंजा। पाड़ै = गिराता है। सौ = वह।

भावार्थ—सरदारो! तुम सिंह मत कहलाओ। क्योंकि तुम दीन बने हुये अपने दिन गुजार रहे हो। सिंह कहलाने का अधिकारी तो वह वीर है जो अपने पंजे से हाथियों को नीचे गिराता है।

४९—छानै = चुपके से। जिण = जिस। देसड़ै = देश में।

भावार्थ—कायर की स्त्री चुपके से अपने पति को छिपा कर कहती है कि हे प्रभो! जिस देश में सिर बिकते हों, वह देश कभी मत दिखाना।

५०—न ठीणौ = निंदा मत करो। ईखौ = देखो। महळ = महिला।

भावार्थ—हे पुरुषों! स्त्रियों की निन्दा मत करो। यह तो संगति देखना चाहिये। वीरों के घर में वीर महिला मिलेगी और कायर के घर में कायर।

५१—नथी = नहीं। धव = पति। अरियां = शत्रुओं ने। बळतां = जलते वक्त। लीधो = लिया।

भावार्थ—हे सखी! पति के जीवित रहते शत्रुओं ने कभी चैन नहीं पाया और अब जलते समय मैंने इन्हें गोद में ले रखा है तो भी इनकी मूँछ नहीं मुड़ रही है। (अर्थात् इस दशा में भी ये शत्रुओं को दुखी कर रहे हैं।)

५२—इळा = पृथ्वी। आपरी = अपनी। हालरियां = लोरियां। हुलराय = झुलाती हुई।

काय उजाळी कंकणी, जे मद पीवण जेज।
कंत समप्पै हेकलौ, कटकां ढाहि कलेज ॥५३॥
बैरी बाड़ै वासड़ौ, सदा खणंके खाग।
हेली कै दिन पाहुणौ, ऊढा भाग सुहाग ॥५४॥
हूँ हेली अचरज कहूँ, घर में बाथ समाय।
हाकौ सुणतां हूलसै, मरणौ कौच न माय ॥५५॥
तन दुरंग और जीवतन, कढणौ मरणौ हेक।
जीव बिणट्ठा जे कढौ, नाम रहीजै नेक ॥५६॥

भावार्थ—अपनी जमीन किसी को न देना—इस भाव के भूले के गीतों के साथ झुलाती हुई माता पालने में ही पुत्र को मरने की महत्ता सिखा देती है।

५३—काय = क्या। उजाळी = उत्सुक। कंकणी = चील। जेज = देर। हेकलौ = अकेला। ढाहि = ढहाकर।

भावार्थ—ऐ चील! इतनी आतुर क्यों है? मद्यपान करने मात्र ही की तो देरी है। फिर तो कंत अकेले ही सेनाएँ ढहाकर तुझे कलेजे समर्पित कर देंगे।

५४—बाड़ै = घर के, बाड़े के। वासड़ौ = निवास। खणंकै = खनकती रहती है। खाग = तलवार। ऊढ़ा = नवोढ़ा।

भावार्थ—हे सखी! वैरी के घर के पास इसका निवास है, जहाँ सदा तलवार खनकती रहती है। कौन जाने इस नवोढ़ा के भाग्य में सुहाग कितने दिनों का मेहमान है।

५५—बाथ = गोद में, भुजाओं में। हाकौ = शो। हूलसै = हर्षित होते हैं। कौच = कवच। माय = में। मरणो = मरण-प्रेमी। हूँ = मैं।

भावार्थ—हे सखी! मैं तुझे एक आश्चर्य की बात कहती हूँ। वे (मेरे पति) घर में तो (मेरी) भुजाओं में समा जाते हैं। परन्तु युद्ध का शोर सुनते ही वे मरण-प्रेमी इतने फूलते हैं कि कवच में भी नहीं समाते।

५६—दुरंग = दुर्ग। कढणौ = निकलना। हेक = एक। बिणट्ठा = विना।

भागीजै तज भींतड़ा, ओड़े जिम तिम अंत।
किण दिन दीठा ठाकुरां, काळा दरड़ करंत ॥५७॥
जिण वन भूल न जावता, गैंद गिवल गिड़राज।
तिण वन जंबुक ताखड़ा, ऊधम मंडै आज ॥५८॥
—वीर सतसई

(२)

उम्मेदसिंह के युद्ध का वर्णन

(दोहा)

ससिअंबरबसु इक समा, विक्रम सकगत वेर।
वुंदियपुर बाजार बिच, झरिग बाढ असि झेर ॥१॥

(मुक्तादाम)

अमावसि सावन मास अनेह, मच्यो इम वुंदिय खग्गन मेह॥
छई नभ गिद्धनि चिल्हनि छत्ति, घुमंडत गूदनचंचुवघत्ति ॥२॥

भावार्थ—दुर्ग में से शरीर का निकलना और शरीर में से प्राण का निकलना एक ही बात है। तब तो क़िले में से मरकर ही निकलना अच्छा है जिससे नाम तो रहे।

५७—भींतड़ा = घर। भागीजै = भाग जाओ। ओड़े = ओट में। दरड़ = बिल। काळा = काला साँप।

भावार्थ—अब ज्यों त्यों किसी की ओट में होकर घर छोड़ भाग जाओ। ठाकुरो! काले साँप को किसदिन बिल बनाते देखा है?

५८—गैंद = गयंद, हाथी। गिवल = गैंडे। गिड़ = शूकर। ताखड़ा = सामर्थ्यवान। मंडै = मचा रहे हैं।

भावार्थ—जिस वन में हाथी, गैंडे और बड़े-बड़े शूकर भी भूल कर नहीं जाते थे, उसी वन में आज गीदड़ भी बड़े शक्तिवान बने उपद्रव मचा रहे हैं।

१— ससि = १। अंबर = ०। वसु = ८। इक = १। ससि अंबर बसु इक समा = १८०१। समा = सम्वत्। वुंदियपुर = बूंदी शहर। झरिग बाढ असि झेर = तलवारों के बाढ़ों की झड़ी लग गई। अर्थात् खूब ज़ोरों से तलवारें चलीं।

२—अनेह = समय। छई = छा गई। गिद्धनि चिल्हनि = गीध और

लगी लुंभि घुम्मन अच्छरि लैन, गुथ्यो रस भाव विभावन गैन ॥
रच्यो इत तंडव नारद रारि, फुक्यो ऋषि व्हाँ महती भनकारि ॥३॥
उड़े सिर झेलत उद्धहि ईस, वहैं इत चंडिय के भुज वीस ॥
चटट्ठहिं रत्त खिलैं चउसट्टि, बबक्कहिं बावन गावन गट्टि ॥४॥
चुरैलिनि मंडत फालन चाल, लगावत डाइनि घुम्मर ताल ॥
वजै लगि खग्गन खग्गन बाढ, गिरैं भट भीरु भजैं तजि गाढ ॥५॥
उमेद दिनेस रच्यो खग खेल, दुरयो सठ घुग्घुव दुग्ग दलेल ॥
फबै असि खुप्परि टोपन फारि, वहैं जनु सब्बुवतंति बिदारि ॥६॥
किरैं कटि हड्डु नु खंड करक्कि, झरैं उड़ि धारन बूर झरक्कि ॥
कटै सह सत्थिन जानुव जंघ, सु ज्यों गज सुंडिनखंडन संघ ॥७॥

चीलों की । छत्ति = छत्री । घुमंडत गूदन चंचुव धत्ति = भेजे पर चोंच चलाने की ताक में मंडराते थे ।

३—अच्छरि = अप्सराएँ । गुथ्यो रस = शृंगार रस के भाव, विभाव आदि गुथे । गैन = आकाश में । तंडव = नृत्य । रारि = लड़ाई । व्हाँ = वहाँ । महती = नारद की वीणा का नाम है ।

४—उड़े सिर झेलत उद्धहि ईस = उड़े हुए मस्तकों को शिव ऊपर ही झेलते हैं । वहैं = चलते हैं । चटट्ठहिं रत्त खिलैं चउसट्टि = ६४ योगिनियें रक्त पीकर प्रफुल्लित होती हैं । बबक्कहिं = बकझक करती हैं । गट्टि = एकत्र होकर ।

५—फालन = कूदती फाँदती हुई । घुम्मर = चक्कर । वजैं...... वाढ़ = तलवारों के साथ तलवारों के टकराने से बाढ बजते हैं । गाढ = हिम्मत ।

६—उमेद = उमेदसिंह, बूँदी नरेश । घुग्घुव = उलूक । दुग्ग = दुर्ग । दलेल = दलेलसिंह, जयपुर की सेना का अध्यक्ष । सब्बुव = साबुन । वहैं जनु......बिदारि = मानों साबुन की टिकिया को बेध कर लोहे आदि का तार बाहर निकला हो ।

७—किरैं = उछलते हैं । करक्कि = टूटकर । धारन = धारों की । बूर = रीठ, झड़ी, निरंतर वर्षा । सह = साथ, सहित । सत्थिन = जंघा का सब से मोटा भाग; राजस्थानी में इसे साथळ भी कहते हैं । जानुव = जंघा का मध्य भाग, घुटना । सु ज्यों = वह मानों । संघ = समूह ।

फदक्कहिँ कढ्ढहिँ कालिक फिप्फ, भचक्कहिँ टोप कपालन भिप्फ ॥
उड़े सिर फुट्टत भेजन ओघ, मनों नवनीत मटक्किय मोघ ॥८॥
मचक्कहिँ रीढ़क वंक अमाप, चटक्कहिँ ज्यों मिथिलापुर चाप ॥
धसैं कढि लोचन सोनित धार, चढ़ैं सिसु मच्छ विलोम कि बार ॥९॥
कढ़ैं गल स्वास बजैं विकरार, धमैं धमनी जनु लग्गि लुहार ॥
कढ़ैं हिय छत्तिय फट्टि किवार, सु ज्यों ह्रद लोहित कंज सुढार ॥१०॥
परैं कढि अंत अपुब्ब प्रकारि, फनीगन जानि टिपारन फारि ॥
परैं छुटि संधित प्रान अपान, मनों पय पानिय लोन मिलान ॥११॥
बनैं फटि डाच कढे रद बड्डु, किधों धृत डब्बिय रङ्क कवड्डु ॥
गिटैं रसना कढ़ि भग्गन ग्राम, चढ़ैं नचि नागिनि ज्यों पय आम ॥१२॥

८—कालिक फिप्फ = कलेजे और फेफड़े। कपालन भिप्फ = कपालों को भेदन कर के। भेजन = भेजे। ओघ = जोर से। मनों...... मोघ = मानो मक्खन की मटकी फूटी हो।

९—रीढ़क वंक = रीढ़ की हड्डी। अमाप = बहुत सी, विशाल। चटक्कहिं......चाप = जनक राजा की पुरी के धनुष टूटे हों। चढ़ैं सिसु......कि बार = छोटी मच्छी पानी में उलटी चढ़ती हो।

१०—स्वास बजै विकरार = साँस के निकलने की भयंकर आवाज होती है। धमनी = धौंकनी। धमैं धमनी......लुहार = मानो लोहार (आग सुलगाने के लिये) धौंकनी चला रहा हो। कढ़ैं = निकलती हैं। छत्तिय = छाती। किवार = किवाड़। कढ़ैं......किवाड़ = छातीरूपी किवाड़ों के फटने से हृदय बाहर निकलते हैं। ह्रद = जलाशय। लोहित कंज = लाल कमल। सुढार = सुन्दर।

११—अंत = आँतें। अपुब्ब प्रकारि = विचित्र रीति से। फनी गन = सर्पों का समूह। परैं......अपान = मिले हुए श्वास-निश्वास की संधि छूटती है। पय = दूध। पानिय = जल। लोन = नमक।

१२—डाच = मुँह। बनैं......बड्डु = मुँह फटकर बड़े बड़े दाँत दिखाई देते हैं। किधों......कवड्डु = मानो दरिद्री ने डिब्बेमें कौड़ियाँ रखी हों। गिटै = निगलती है। ग्राम = समूह। आम = कच्चा।

लगै दृग मुच्छ फरक्कंत लीन, मनों उरभी बनसी मुख मीन ॥
छलैं छत रत्त छछक्कन छुट्टि, फबै जनु गग्गरि जावक फुट्टि ॥१३॥
झुकै असि मत्त दुहत्थन झारि, मनौं रजकालि सिला पट मारि ॥
छुटै फटि पेटिय लेटिय लंब, तनै पट जानि कुविंद कदंब ॥१४॥
मचै रव टोप उडै फटि मत्थ, अलाबुव जानि अतीतन हत्थ ॥
कढ़ै दृग लग्गि कनीनिय काल, मनों कुवलोहित भौंरन माल ॥१५॥
चलै फटि ढाल बकत्तर चीर, सु ज्यों तरु ताडन पत्त समीर ॥
धसै हिय गोलिय गावत गित्त, मनों पटवा बटवा विच वित्त ॥१६॥
रटै फटि कोच करी रननंकि, भरै घन वादन ज्यों झननंकि ॥
घटै दम मत्त थकै छकि घाय, मनों मद पामर जीह जड़ाय ॥१७॥

गिटैं रसना......आम = जीभ झागों के समूह को निगलती है सो मानो सर्पिणी कच्चा दूध पीती है।

१३—मुच्छ = मूँछें। मानों......मीन = मानो मच्छी पकड़ने का काँटा मच्छी के मुख में फँस गया है। छत = (सं० क्षत) घाव। रत्त = रक्त, रुधिर। फबै......फुट्टि = मानो जावक का फूटा हुआ घड़ा शोभायमान है।

१४—झुकै......झारि = मतवाले वीर झुककर दोनों हाथों से तलवार का वार करते हैं। मनौं......मारि = मानो धोबियों की पंक्ति शिला पर कपड़े पछाड़ रही है। पेटिय = कमर पेटी। लेटिय लंब = लंबी पड़ी हुई। तनै......कदंब = मानो जुलाहों के समूह वस्त्र फैलाते हैं। कुविंद = जुलाहे। कदंब = समूह।

१५—मत्थ = मस्तक। अलाबुव......हत्थ = मानो जोगियों के हाथ से तूँबे गिरते हैं। कनीनिय काल = आँखों की काली पुतली। कुवलोहित = लाल कमल। माल = समूह।

१६—ढाल बकत्तर चीर = ढाल, बख्तर और वस्त्र। सु ज्यों...... समीर = मानो पवन से ताड़ वृक्ष के पत्ते फटते हैं। गावत गित्त = गीत गाती हुई, आवाज करती हुई। पटवा = पटुवा, रेशम का काम करनेवाली जाति विशेष। बटवा = बटुआ।

१७—कोच करी = कवच की कड़ी। घन वादन = काँसे आदि के बने हुए वाद्य। भरैं = बजते हैं। झननंकि = झंकार की आवाज़ के साथ। घटैं दम = दम घटता है, शक्ति क्षीण होती है।

कढैं वपु छक्कि वरच्छिन व्रात, तृणध्वज अग्ग कि गज्ज प्रपात ॥
लगैं निकसैं छकि पट्टिस लाल, मनों परतीयन के कर जाल ॥१८॥
सुहैं फटि हड्डु चटच्चट संधि, चटक्कत प्रात गुलाव कि गंधि ॥
उठैं विनु मत्थ किते तनु तुंग, थेइत्थेइ नच्चत थुंगत थुंग ॥१९॥
ववक्कत डाच कितेकन वैन, मनों वड वक्कर टक्कर मैन ॥
गिरैं वररक्कत पंसुलि गात, मनों कठछप्पर पत्थर पात ॥२०॥
छुटैं पल जानु कढैं नल हड्डु, मनों रद वारन बंगर बड्डु ॥
लटक्कत पाय रुकावन रुक्कि, मनों तप सिद्ध अधोमुख झुक्कि ॥२१॥
मलंगत छत्तिन के क्रम मप्पि, मनों नट पट्टरि पाय मलप्पि ॥
छुटैं घन घायक सायक सोक, उडैं सरघा घन ज्यों तजि ओक ॥२२॥

मत्त = मतवाले । वकैं = वकते हैं। छकि घाय = घावों से परिपूर्ण होकर। मद = शराव ।

१८—वपु = शरीर। छक्कि = छेद कर। व्रात = समूह। तृणध्वज...... प्रपात = जैसे मेघ की गर्जना से वाँस का अंकुर फूट निकलता है। पट्टिस = कटार । छकि = छक कर। मनों......जाल = मानो परकीया नायिका के हाथ जालियों से निकले हैं। (परकीया नायिका महँदी से रंग हुआ हाथ दिखा कर लाल रंग के संकेत से उपपति को अपना रजस्वला होना सूचित कर उसके आने का निषेध करती है।)

१९—तुंग = विशाल । सुहैं = शोभायमान होती हैं । चटच्चट संधि = हड्डियों के जोड़ तड़कते हैं। थुंगत थुंग = समूह के समूह।

२०—डाच = मुख । ववक्कत......मैन = कइयों के मुँह से ऐसे अवाच्य शब्द निकलते हैं, जैसे वड़े कामी वकरों की टक्कर में भी नहीं निकलते। वररक्कत = वरर की आवाज़ के साथ। पंसुलि = पसली ।

२१—छुटैं......बड्डु = माँस छूट कर घुटनों सहित नली की हड्डियाँ निकलती हैं, मानो हाथी के वड़े दाँत वंगड़ सहित शोभायमान हैं। पल = माँस। मनों......झुक्कि = मानो कोई सिद्ध नीचा मुँह किये तपस्या कर रहा है।

२२—घन = वहुत से । घायक सायक = घाव करनेवाले तीर ।

छके कति वृत्त फिरे सुधि छोरि, बनें जनु बालक भंभह भोरि ॥
गिरैं सर विद्ध घने सिर तत्त, मनों सरघान तजे मधुछत्त ॥२३॥
सरैं घन संगिन भिन्न सरीर, कुमारिन के जनु उज्ज करीर ॥
बकैं बहु प्रेत मिले गल बत्थ, किधों रन मल्ल अपूरब कत्थ ॥२४॥
जगावत हाक रचावत जंग लगावत भैरव नट्ट मलंग ॥
घसैं चढि डाकिनी के मृत छत्ति, मनों कि बिदूसक कौं तिय मत्ति ॥२५॥
अटैं पय इक्क किते छक ओप, किते इक नैंन लखैं भरि कोप ॥
करैं कटि जीह किते अअ कूक, मनों कि परागिर प्रेरित मूक ॥२६॥
क्रमैं इक ओठ किते इक कान, घनैं मुख अद्ध रचैं घमसान ॥
कितैं इक हत्थ किते गत केस, बनें बहुरूप मनों नव वेस ॥२७॥
मिलैं रसना कढि नक्कुट मूल, फबैं भुजंगी कि लगी तिलफूल ॥
किते कर टेकि उठैं रन रत्त, मनों मदछाकन पामर मत्त ॥२८॥

उड़ैं......ओक=मानो मधुमक्खियाँ अपने छत्तों को छोड़ कर उड़ती हैं। सरघा=मधुमक्खी। ओक=घरा, छत्ता।

२३—वृत्त=चक्राकार में। भंभह भोरि=बच्चों का एक खेल विशेष। मनों......मधुछत्त=मानो मधुमक्खियों के छोड़े हुए छत्ते हैं।

२४—सरैं......करीर=बरछियों से बहुत छिदे हुए शरीर चलते हैं, मानो कार्तिक माह में लड़कियों के बहुत छिद्रवाले घड़े हैं। करीर=घड़े। गल बत्थ=गलबहियाँ।

२५—हाक=पुकार। मलंग=उछल-कूद। घसैं......मत्ति=मरे हुओं की छातियों को डाकिनियाँ घिसती हैं, जैसे कामी पुरुष को स्त्री। बिदूसक=कामी पुरुष।

२६—अअ कूक=अस्पष्ट आवाज़ में। मनों......मूक=दूसरे= की वाणी से प्रेरित किया हुआ गूँगा मनुष्य।

२७—क्रमैं=फिरते हैं। घनैं......घमसान=कोई आधे मुखवाले युद्ध करते हैं। बहु रूप=भांड। नव वेस=नया स्वाँग। गत केस=बिना बालवाले।

२८—मिलैं......तिलफूल=जीभ कटकर नासिका के मूल से मिलती है, मानो तिल के फूल से लगी हुई सर्पिणी शोभा देती है। रन रत्त=युद्ध-प्रिय वीर। मद छाकन=नशे में चूर। पामर= शराबी। मत्त=मतवाला।

रहैं कति गिद्धन कों गल लाय, कहैं कति हू रव ऐंचत हाय ॥
बकैं कति मात पिता तिय बैन, गिरैं कति मोहित उच्छलि गैन ॥२६॥
श्रव घन सावन को इत तुट्ठि, वरूथ घटा इत आयुध बुट्ठि ॥
वहैं पुर बुंदिय सोन बजार, धपी जनु जोहि सरस्वति धार ॥३०॥
गिरैं जल बद्दल गंग सु गाथ, पुर स्त्रिय अंसुव जामुन पाथ ॥
वही इम वेनिय पत्तन बीच, मिलैं बहु मुक्ति जहाँ लहि मीच ॥३१॥
बन्यो रन बुंदिय सावन अद्ध, दुधाँ असि ज्वाल भयो पुर दद्ध ॥
चुहट्टन लग्गिय लुत्थन लुत्थि, बिथारिग हट्टन बट्टन बुत्थि ॥३२॥
समाकुल रुंड परे खिलि खंड, ढरे बनिजारन के जनु टंड ॥
डडक्कत डाहल के डमरूक, धुरावत घाय घने जनु घूक ॥३३॥

२९—गल लाय = गले से लगाकर। रव ऐंचत हाय = हाय, हाय की आवाज़ करते हैं। कति = कहीं। मोहित = मूर्छित होकर। उच्छलि गैन = आकाश में उछल कर गिरते हैं। गैन = आकाश।

३०—श्रव......तुट्ठि = मानो श्रावण माह का मेघ प्रसन्न होकर वर्षा कर रहा है। वरूथ......बुट्ठि = सेनारूपी घटा इधर शस्त्र बरसाती है। सोन = रुधिर। जोही = वही। धपी......धार = वही मानो सरस्वती (नदी) की लाल धारा प्रवाहित हुई।

३१—गिरैं......गाथ = बादलों से जल गिरता है, वही श्रेष्ठ यशवाली गंगा है। पुर......पाथ = बूँदी शहर की स्त्रियों के (कज्जल युक्त) नेत्रों से आँसू गिरते हैं, वही यमुना का जल है। इम = इस प्रकार। वेनिय = त्रिवेणी। पत्तन = नगर। मिलैं......मीच = मृत्यु होने पर जिस त्रिवेणी में मुक्ति मिलती है।

३२—दुधाँ......दद्ध = दोनों ओर की तलवार की ज्वाला से पुर दग्ध हो गया। चुहट्टन......लुत्थि = बाज़ारों में लोथों ही लोथों का ढेर हो गया। बिथारिग = बिखर गये। हट्टन = हाटें। बट्टन = मार्ग। बुत्थि = बहुत।

३३—समाकुल......टंड = मस्तक रहित शरीरों के टुकड़े होकर पड़े हैं, मानों बनजारों का टांडा पड़ा है। डडक्कत = बजते हैं। डाहल = भैरव, देवी आदि। डमरूक = डमरू, वाद्य विशेष।

रटैं सिर मार अटैं कति रुंड, मिटै कति जोर फटैं कति मुंड ॥
बरैं सिर मंगि भरैं हर बैल, छकैं कति छोह हकैंरन छैल ॥३४॥
लगैं कति कंठ लरत्थर पाय, जगैं कति प्रेत ठगैं भट जाय ॥
लखैं कति हूर चखैं मिलि लाह, नखैं नभ फूल रखैं गिनि नाह ॥३५॥
किरैं कहुँ कोंच खिरैं लगि खग्ग, फिरैं कति मत्त भिरैं जनु फग्ग ॥
चिरैं सिर बाढ गिरैं अति चोट, धिरैं नद सोन तिरैं कहुँ घोट ॥३६॥
जरैं उडि अग्नि झरैं असि जोर, ढरैं भट केक टरैं जिम ढोर ॥
दरैं कति कुप्पि धरैं धक दाव, भरैं कति भूरि मरैं मृत भाव ॥३७॥
मरैं थकि स्वास परैं कहुँ मूढ, अरैं कहूँ हूर बरैं नवऊढ ॥
ररैं हरि केक लरैं धकि रोस, हरैं जिय केक सरैं तजि होस ॥३८॥

घुरावत......घूक=उल्लूकों के समान बहुत से घायल बोलते हैं।

३४—बरैं......बैल=कितने ही शिरों को लेकर शिव अपने बैल पर भरते हैं (लादते हैं)। छकैं......रन छैल=रण रसिक वीर क्रोध में छक कर आगे बढ़ते हैं।

३५—लरत्थर पाय=पाँव लड़खड़ाते हैं। जगैं......जाय=कितने ही प्रेत उठते हैं और वीरों को ठगते हैं। हूर=अप्सरा। नखैं......नाह=आकाश से फूल गिराकर उनको अपना पति मानकर रखती हैं। नखैं=डालती हैं, गिरती हैं।

३६—किरैं......खग्ग=तलवारें लगकर कहीं कवच गिरते हैं। कति=कहीं। जनु फग्ग=मानो फाग खेल रहे हैं। घिरैं...... घोट=रुधिर की नदी में गिरे हुये कहीं पर घोड़े तैरते हैं।

३७—केक=कई एक। ढोर=पशु, गाय, भैंस आदि जानवर। कुप्पि=कुपित होकर। धक=वेग के साथ। जरैं......भाव= ज़ोर से तलवारों के पड़ने से अग्नि उड़कर जलती है, जिससे कितने ही वीर गिरते हैं और कितने ही पशु के समान टलते हैं और कितने ही क्रोध करके वेग के साथ दाव देकर विदीर्ण करते हैं अर्थात काटते हैं। दरैं=विदीर्ण करते हैं।

३८—मूढ=मूर्छित होकर। नवऊढ=नवीन। अरैं......नवऊढ= मूर्छित होकर कितनी ही अप्सराएँ हठ करके नवीन वर करती

फटै धर प्रेत वटैं सिर फाँक, लटैं मन केक कटैं उर लाँक ॥
खुलैं कहुँ नैन डुलैं कहुँ खग्ग, झुलैं कहुँ उद्ध फुलैं मुख भग्ग ॥३९॥
छुलक्कत घायन रत्त छछक्क, उरज्झत केस बनैं अकबक्क ॥
त्रहक्कत तंतिन सिंधुव तार, दहक्कत भूतल देत दरार ॥४०॥
झनंकत पक्खर बेधित बंट, घमंकत घुग्घर घंटन घंट ॥
बढी कुणपावलि उग्र बखान, मनों बड़ पत्तन दिग्घ मसान ॥४१॥
गवात्तन जालिन के पट डारि, रही रन बुंदिय नारि निहारि ॥
बढी घन मार मची हथबाह, रुक्यो रवि जंपत वाह सिराह ॥४२॥
अरयो नृप छोनिय लैन उमेद, खिज्यो इम देत दलेलहिं खेद ॥
बढे गढ सम्मुह छेकि बजार, मिली तहँ सत्रु हजारन मार ॥४३॥
चले सर चंड चटठ्ठत चाप, मचावत पंखन सोक अमाप ॥
बहैं बरछी असि तोमर तोम, बनैं नर कातर लोम बिलोम ॥४४॥

हैं। ररैं हरि केक = कई एक विष्णु भगवान को रटते हैं। सरैं तजि होस = चेत को छोड़ कर चलते हैं।

३९—थर = धड़। वटैं = बाँटते हैं। सिर फाँक = सिर के हिस्से को। लटैं मन = मन मोड़कर। लाँक = कमर। झुलैं कहुँ उद्ध = ऊपर झूलते हैं।

४०—छुलक्कत = छलकता है। दहक्कत = दहकता है। अकबक्क = हक्का बक्का, विभ्रांत। त्रहक्कत = बजते हैं।

४१—पक्खर = झूल। झनंकत = झंकार करते हैं। घुग्घर = घुँघरू। घंटन घंट = गले की घंटियाँ। कुणपावलि = मुर्दों की पंक्ति। मनों......मसान = मानों किसी बड़े नगर का श्मशान है।

४२—गवात्तन......डारि = झरोखों की जालियों पर परदे डालकर। जंपत वाह सिराह = प्रशंसा का वचन कहता हुआ। हथबाह = हाथापाई, धक्कमधक्का।

४३—छोनिय = पृथ्वी, अपना राज्य। उमेद = उम्मेदसिंह। खिज्यो = क्रोध करके। दलेलहिं = दलेलसिंह को। खेद = संताप।

४४—सर चंड = तेज बाण। चटठ्ठत चाप = धनुष खींचकर। अमाप = अथाह, बहुत ज्यादा। तोमर तोम = भालों के समूह। लोम बिलोम = रोमांचित।

उरझ्झत अंत्र कटारन तारि, गही जनु नागिनि अंकुस डारि ॥
लगैं खर खंजर पंजरलीन, मनों प्रतिलोम धसैं जल मीन ॥४५॥
चलैं फटि पात गदा सिर चीर, मनों तरबूज हनें कर कीर ॥
चलैं तजि म्यॉन छुरी पल चाह, मनो पिचकारिन वारि प्रवाह ॥४६॥
फरप्फर चिल्हनि गिद्धनि झुंड, मरोरत चंचुन अँचत मुंड ॥
किलोलत स्यार सिवागन कंक, नचैं बहु डाकिनि प्रेत निसंक ॥४७॥
घनैं हननंकत घोटक घुम्मि, भिरैं कति भिन्न गिरैं छकि भुम्मि ॥
कुसा गल छुट्टत तुट्टत तंग, भभक्कत मारुत प्रोथनं भंग ॥४८॥
परैं प्रजरैं जर जीन पलान, किते कविका बिनु लेत उड़ान ॥
बहै पुर तद्दिन रत्त रु बार, धपी वढि बीथिन बीथिन धार ॥४६॥
मनो यह दुग्ग छुधातुर पाय, दये बलि मानव संभर राय ॥
समाकुल लुत्थिन बुत्थिन वट्ट, चढ़ैं पल चिक्कन हट्ट चुहट्ट ॥४०॥
सह्यो घन चोरन को दुख जीय, लगैं अब्र बुंदिय भूपति हीय ।।
घनैं दिन भुग्गि वियोगज भार, कियो जनु सोनित रंग सिंगार ॥५१॥

४५—अंत्र = आँतों में । कटारन तारि = कटारियों की मूठें । लगै... मीन = तेज खंजर शरीर में घुसता है, मानो मच्छी पानी में उलटी धँसती है ।

४६—पात = चोट । कीर = कीर जाति का मनुष्य । पळ चाह = गोश्त की इच्छा से ।

४७—सिवागन = गीदड़ियां । कंक = ढीच, पक्षी विशेष ।

४८—घनैं = बहुत से । हननंकत = हिनहिनाते हैं । घोटक = घोड़े । घुम्मि = घूमकर । कुसा = घोड़े की लगाम । तंग = घोड़े की काठी आदि को कसने का चमड़े का पट्टा । प्रोथन भंग = जबड़ों के टूटने से ।

४९—कविका = लगाम । तद्दिन = उस दिन । रत्त रुवार = खून और पानी ।

५०—छुधातुर पाय = भूख से पीड़ित देखकर । वलि मानव = मनुष्यों का बलिदान । समाकुल = भर गये । वट्ट = मार्ग । पल चिक्कन = माँस और चर्वी ।

५१—वियोगज भार = वियोग का दुख । सोनित रंग = लाल रंग का ।

दलेल लखी तप की तरवारि, धुज्यो छत दुग्ग पलायन धारि ॥
सुन्यों यह जैपुर जामिप भार, कियो निज मंत्रिय भ्रात तयार ॥५२॥

—वंशभास्कर

५२—दलेल = दलेलसिंह । धुज्यो......धारि = गढ़ के रहते हुये भागने का विचार कर काँप उठा । जामिप = जामाता ।

सहायक ग्रंथों की सूची

हिन्दी

१. उदयपुर राज्य का इतिहास (डा० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा)

२ वीर विनोद (कविराजा श्यामलदास)

३ बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग १–३ (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी)

४ मिश्रबंधु विनोद, भाग १–४ (श्री मिश्रबंधु)

५ पृथ्वीराज रासो (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी)

६ राजस्थान रा दूहा (श्री नरोत्तमदास स्वामी)

८ राज विलास (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी)

८ पृथ्वीराज रासो (पं० मथुराप्रसाद दीक्षित)

९ कविता कौमुदी, भाग १ (श्री रामनरेश त्रिपाठी)

१० ढोला मारू रा दूहा (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी)

११ वेलि किसन रुकमणी री (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)

१२ वेलि किसन रुकमणी री (डा० एल० पी० टैसीटरी)

१३ हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल)

१४ हिन्दी भाषा और साहित्य (बाबू श्यामसुन्दरदास)

१५ हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (श्री रामकुमार वर्मा)

१६ वंश भास्कर (पं० रामकर्ण आसोपा)

१७ डिंगल कोष (कविराजा मुरारिदान)

१८ वीरसतसई (कविराजा सूर्य्यमल)

१९ राजा रसनामृत (मुंशी देवीप्रसाद)

२० कविरत्न माला (मुंशी देवीप्रसाद)

२१ भारतवर्ष का इतिहास (डा० ईश्वरीप्रसाद)

२२ महाराणा-यश-प्रकाश (ठा० भूरसिंह शेखावत)

२३ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा (पं० मोतीलाल मेनारिया)

२४ हरिरस (ईश्वरदास)

२५ विरुद छहतरी (दुरसाजी)

२६ हिन्दी के कवि और काव्य (श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी)

२७ ऊमर काव्य (ऊमरदान)

२८ राजिया रा सोरठा (कृपाराम)
२९ बीसलदेव रासो (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी)
३० सूरजप्रकाश (करणीदान)
३१ राणा रासो (दयालदास)
३२ रघुवर-जस-प्रकाश (किशन जी आढ़ा)
३३ बालाबख्शजी की जीवनी (पु० श्री हरिनारायण)
३५ हिन्दी भाषा का इतिहास (डा० धीरेन्द्र वर्मा)
३५ वीर विनोद (स्वामी गणेशपुरी)
३६ चतुर चिंतामणि (महाराज चतुर्सिंह)
३७ छंद राउ जइतसी रउ (डा० एल० पी० टैसीटरी)
३८ केहर प्रकाश (कविराव बख्तावर जी)

हिन्दी-पत्र-पत्रिकाएँ

१ नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका
२ राजस्थानी
३ हिन्दुस्तानी
४ सरस्वती
५ चारण

अंग्रेजी

1 The Oxford Hisory of India : V.A. Smith
2 A Descriptive Catalogue of Bardic and Historical MSS. Pt. I
3 Preliminary Report on the operation in Search of Bardic chronicles.
4 Annals and Antiquities of Rajsthan : Col. James Tod.
5 The Imperial Gazetieer of India, Vol. XXI

अन्य

१ कोशोत्सव स्मारक संग्रह
२ एकादश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्य विवरण
३ हिन्दी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट

—:o:—